मुनि नेमिचन्द सिद्धान्तिदेव विरचित

द्रव्य संग्रह

सम्पादक

प्रज्ञाश्रमण मुनि अमितसागर

प्रकाशक

श्री धर्मश्रुत शोध संस्थान,

श्री दिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर (नसिया जी) कोटला रोड

फिरोजाबाद (उ०प्र०)

कृति - द्रव्य संग्रह **पुष्प संख्या**-तेरह

कृतिकार - मुनि नेमिचन्द सिद्धान्तिदेव

सम्पादक - प्रज्ञाश्रमण मुनि अमितसागर

पावन प्रसङ्ग - बीसवीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैन आचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्रीशान्तिसागर जी महाराज के तृतीय पट्टाधीश आचार्य शिरोमणि श्रीधर्मसागर जी महाराज के पट्ट शिष्य प्रज्ञाश्रमण मुनिश्री अमितसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में गोम्मटेश्वर बाहुबली भगवान के सन् २०१८ के महामस्तिकाभिषेक के उपलक्ष्य में प्रकाशित।

[पुस्तक प्राप्ति स्थान]

१. चन्द्रा कापी हाऊस, हास्पिटल रोड, आगरा (उ०प्र०)
मो०: ०९४१२२६०८७९

२. वास्ट जैन फाउण्डेशन ५९/२ बिरहाना रोड, कानपुर (उ०प्र०)
मो0: ०९४५१८७५४४८

३. आलोक जैन, हनुमानगंज C/O श्री दिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर,
नसिया जी, कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ०प्र०) मो०: ०९९९७५४३४१५

४. आचार्य श्री शिवसागर ग्रन्थमाला, श्री शान्तिवीर नगर,
श्री महावीर जी, जिला-करौली (राज०)

५. श्री दिगम्बर जैन अष्टापद तीर्थ, विलासपुर चौक, धारूहेड़ा,
गुडगाँव (हरि०) मो०: ०९३१२८३७२४०

६. प्राचीन आर्ष ग्रन्थालय, जैन बाग, सहारनपुर (उ०प्र०)
मो०: ०९४१०८७४७०३

७. विशुद्ध ग्रन्थालय, सर्वऋतु विलास, उदयपुर (राजस्थान)

९. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, कटरा सेवा कली, नया शहर, इटावा (उ०प्र०)
मो०: ०९४१२०६८६३९

कम्पोजिंग - वर्धमान कम्प्यूटर, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

संशोधित संस्करण - चतुर्थ, सन् २०१८

प्रतियाँ - २०००

मूल्य - ३० ₹ — तीन बार स्वाध्याय का नियम

मुद्रक - महेन्द्रा पब्लिकेशन प्रा०लि०, ई-मेल - ४२,४३,४४, सेक्टर ७ नोएडा (उ०प्र०)

प्रकाशकीय

गुरुदेव कहा करते हैं कि दर्पण और दीपक कभी झूठ नहीं बोलते हैं। जलते हुए दीपक को कहीं भी ले जा सकते हैं, किन्तु अँधेरे को कहीं नहीं ले जा सकते हैं।

जैन धर्म का आगम-सिध्दान्त; दर्पण एवं जलते हुए दीपक की तरह है। नकटे या कुरूप को दर्पण दिखाने से उसके कषाय उत्पन्न होती है। चोर-व्यभिचारी-व्यसनी को रोशनी का भय सताता है।

अज्ञानी; ज्ञान-दीपक का सामना नहीं कर सकता है। व्यसनी; दर्पण की झलक को सहन नहीं कर पाता है।

दर्पण; आदर्श को कहते हैं। दर्प जिसमें नहीं हो वह दर्पण है। दर्पण में देखने सब ललकते हैं, किन्तु दर्पण किसी को देखने नहीं ललकता; यही तो उसका आदर्श है।

दर्पण और दीपक को डराने-धमकाने वाले पत्थर और आँधियाँ हैं। जो दर्पण; पत्थर से नहीं डरता वही दर्पण है। जो दीपक; आँधियों से नहीं घबड़ाता वही दीपक है।

हम अपनी बात इन्हीं दो पूर्ण सत्यों के साथ प्रारम्भ करते हैं। पूज्य गुरुदेव से फिरोजाबाद जनपद की जनता; सन् १९९२ से परिचित हैं । परिचित हैं उनके दर्पणवत् स्वभाव से; धनिक-निर्धन, पूजक-निन्दक दोनों समान। परिचित हैं उनके दीपकवत् साहस से । वो कभी अपना परिचय स्वयं इस अन्दाज में देते हैं ——

आँधियों के बीच जो जलता हुआ मिल जाएगा ।
उस दिये से पूछना मेरा पता मिल जाएगा ।।
अय! आँधियों अपनी औकात में रहो ।
हम तो जलते हुए दिये हैं जलते ही रहेंगे ।।
देख चिरागों के शोले मञ्जिल से इशारा करते हैं ।
तू हिम्मत हारा जाता है कहीं हिम्मत हारा करते हैं ?

हम जनपदवासी; सन् १९९२ से इस जलते हुए दीपक को देख रहे हैं, जो व्यक्ति, परिवार, समाज, गाँव, शहर, राज्य, राष्ट्र एवं विश्व के लिए, अपने प्रकाश से मार्गदर्शन कर रहा है ।

इस जलते हुए दीपक को; कितनी आँधियों-तूफ़ानों ने बुझाने की कोशिश

की, लेकिन यह दीपक बुझने की जगह और भी अधिक प्रकाशमान हो गया और अँधी-आँधियाँ; हार मानकर बैठ गईं ।

इस दर्पण को; कितने ही छोटे-छोटे कङ्कण ही नहीं; पहाड़ जैसे पत्थर भी धमकी देते रहे, लेकिन दर्पण; दर्पण ही रहा, उन वेजान पत्थरों के सामने समर्पण नहीं हुआ ।

बस; इन्हीं दो उपमाओं में ही इस व्यक्ति का व्यक्तित्व समाया है। ख्याति-पूजा-लाभ से दूर, दूरदर्शन के प्रदर्शन एवं पोस्टरों के पोस्ट की परछाईयों से विलग, अनेक उपाधियों और पद-प्रतिष्ठा की होड़ से उदासीन ।

एक वैज्ञानिक की तरह वस्तु-तत्त्व की तह में जाकर उसे समझना जिनके स्वभाव में है । बड़े-बड़े ग्रन्थों के रहस्यों को सरलता से; **स्वरूप भेद और स्वामी भेद की कुञ्जी से; आगम, युक्ति, गुरूपदेश एवं स्वानुभव से सिध्द करना उनका लक्ष्य रहता है ।**

वैसे तो इतिहास में कोई भी आचार्य-गुरुजन अपना भौतिक परिचय लिखकर नहीं गए, किन्तु उनके जीवन्त कृत्य ही उनके अमर परिचय हो गए । गुरु जी कहा करते हैं कि —

अच्छे कार्य स्वयं में प्रशंसनीय हुआ करते हैं, अतः हमें कभी; दूसरों से प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए ।

फिर भी हम भक्त-श्रध्दालुजन अपने इष्ट की आराधना-स्तुति करके पुण्योपार्जन कर लेते हैं, यह एक उद्देश्य है। दूसरा उद्देश्य; सब कोई उनके बारे में; उनके परिचय से सही परिचित हों प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से, अतः इस उद्देश्य से उनका परिचय भी देना अनिवार्य है।

आप में देखा है हम सबने; कुन्दकुन्दाचार्य का अध्यात्म और उनके जैसा धर्मायतनों को बिना हिंसा के बचाने वाला **'बलात्कारगण'**, मैनपुरी एवं फिरोजाबाद इनके उदाहरण हैं।

समन्तभद्राचार्य जैसा शास्त्रार्थ करने का अदम्य साहस एवं फिरोजाबाद जिले के चन्द्रवाड़ के किले में मूर्तियाँ प्रगटाने वाला गौरव पूर्ण अतिशय इसका प्रमाण है।

पूज्यपादाचार्य जैसी आगमोक्त लक्षणावली आप में हैं, क्योंकि आप पूज्यपादाचार्य एवं समन्तभद्राचार्य के आगम को सिराहने रखकर सोते हैं, यह अनुत्तर जिज्ञासा टीका इसका जीवन्त प्रतीक है।

अकलङ्काचार्य जैसे प्रमाणों की प्रचुरता; उनकी वाणी एवं लेखनी में विराजमान रहती है। आप कहते हैं, एक दर्पण को देखने; दूसरे दर्पण की जरूरत नहीं होती है, अतः एक प्रमाण के लिए दूसरे प्रमाण की जरूरत नहीं होती है। **जिसको जिनवाणी-आगम-सिद्धान्त में ही श्रध्दा नहीं है, उसे कितने ही आगम-सिध्दान्त दिखला दो; मानने वाला नहीं है।**

मानतुङ्गाचार्य जैसी ताले टूटने वाली आश्चर्यकारी घटनाओं से फिरोजाबाद जनपद अनजान नहीं है। वादिराज मुनिराज जैसी आस्था से असाध्य रोग से मुक्ति के चमत्कारी दृश्य जिनके स्वयं पैदा हो गए।

जिनसेनाचार्य जैसे निर्विकार-अनासक्त भाव; जो कर्त्ता में अकर्त्ता, भोक्ता में अभोक्ता की अनुभूति कराते हैं।

अमृतचन्द्राचार्य जैसे निर्नाम निर्माण —— कहीं-किसी भी जगह अपने व्यक्तिगत नाम के कोई आश्रम-मठ-मन्दिर, संस्थान आदि नहीं बनवाये। आप कहते हैं कि ——

जिस खुदा ने ये दुनिया बनाई, उसने अपनी फोटो नहीं छपाई।
दुनिया को बर्वाद करने वाले, अपनी फोटो छपाते फिरते हैं।।

आपका हमेशा शिक्षा एवं चिकित्सा पर जोर रहता है । शिक्षा चाहे लौकिक हो या पारलौकिक; सभी को प्रोत्साहन देते हैं । छोटे बच्चों से पढ़ाई के लिए पूछते हैं कि तुम्हें क्या बनना है ? **"कुर्सी विछाने वाला चपरासी या कुर्सी पर बैठने वाला ऑफीसर । बड़े बच्चों को कहते हैं कि तुम्हारी चार साल की पढ़ाई का जीवन; तुम्हारे चालीस साल बना देगा, फालतु वातावरण से बचो ।"**

बालकों से लगाव, युवाओं को प्रेरणा, वृध्दों की सेवा-वैय्यावृत्ति, समाधिस्थों की साधना में आपका निर्यापकाचारित्व अनुभूत आदर्श है।

आपकी प्रथम प्रकाशित कृति मन्दिर है जो अद्यावधि हिन्दी, मराठी, गुजराती, कन्नड़ एवं अंग्रेजी संस्करणों में; लगभग दो लाख प्रतियों से भी अधिक प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपने बाल साहित्य के रूप में बालगीत, बाल कहानियाँ, जैन चित्र कथायें, बाल विज्ञान के क्रमशः पाँच भाग, आसान उच्चारण, सरल उच्चारण, अनुपम पाठसंग्रह, रयणसार, द्रव्य संग्रह द्वारा मूलपाठों को उच्चारण-पढ़ने योग्य बनाया है।

इसी के साथ कई ग्रन्थों के प्रकाशन की प्रेरणा दी; जिनमें धर्म परीक्षा, सम्यक्त्व कौमुदी, दानशासन, दान चिन्तामणि, धर्मध्वज विशेषाङ्क, भक्तामर शतद्वयी, सिरिभूवलय, नाममाला, चौबीस ठाणा, गुरु-शिष्य दर्पण, बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, श्री सिध्दचक्र विधान कवि-सन्तलाल जी, जैन-अभिषेक पाठ संग्रह, चौंतीस स्थान दर्शन आदि कृतियाँ कुछ प्रकाशित हैं, कुछ प्रकाशकाधीन हैं।

प्रवचन सङ्कलन में; आँखिन देखी आत्मा— इसमें उत्तमक्षमादि दशधर्मों के स्वरूप को, आगमिक, वैज्ञानिक आदि के आधार पर विवेचित किया गया है। दशलक्षण पर्वों में विद्वानों द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है।

अन्तरङ्ग के रङ्ग— इसमें षट्लेश्या का वर्णन किया गया है। आप अपने परिणामों का स्वयं निरीक्षण करें। अपने भावों के अच्छे-बुरे की पहचान होती है।

अनुत्तर यात्रा— सोलह कारण भावनाओं का औपन्यासिक विश्लेषण है कि साधारण-सी आत्मा त्रैलोक्य पूज्य तीर्थङ्कर पद तक कैसे पहुँचती है ? कई संस्करणों में प्रकाशित हो चुके हैं।

नीतिशास्त्र; कुरल काव्य कृति— उन नीतियों का संग्रह है जो दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य ने सर्वजनहिताय-सर्वजनसुखाय संकलित की थीं। जिनकी आज; व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य एवं राष्ट्र के कर्त्तव्यों के प्रति ज ागरुक करने की परम आवश्यकता है। इसका सम्पादन किया जो प्रभात प्रकाशन दिल्ली से २०१० में प्रकाशित हुआ। अब इसका नया संस्करण पुनः प्रकाशित हो गया है।

आपकी "बोलती माटी" महाकाव्य कृति— सरलतम भाषा की एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसमें एक अकिञ्चन्य माटी को पात्र बनाकर, मद से भरे पात्रों को निर्मद बना दिया। तुच्छ से उच्च बनाने की शिक्षा देने वाली कृति; आज नहीं तो कल इसकी आवश्यकता अवश्य होगी। इसका प्रथम संस्करण; एक बार लगभग बाईस वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था, किन्तु पुनः उसके संशोधित-संस्करण का प्रकाशन हो चुका है।

अमृतचन्द्राचार्य कृत तत्त्वार्थसार कृति — आपके द्वारा सम्पादित आगम की प्रथम कृति है जिसका श्रीधर्मश्रुत ज्ञान, हिन्दी टीका के रूप में सम्पादन; सन् २०१० में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित किया गया।

आज हमें यह परम सौभाग्य प्राप्त हो रहा है कि हम पूज्य मुनिश्री के

द्वारा सम्पादित **'द्रव्य संग्रह'** का हिन्दी सम्पादन कर प्रकाशन कर रहे हैं।

गुरुदेव के द्वारा संकलित, रचित, सम्पादित साहित्य में मुनिश्री की अयाचित वृत्ति से; दान दाता उदार मन से स्वेच्छया राशि से सहयोग करते हैं, उन दानी महानुभावों के हम आभारी हैं।

मुनिश्री द्वारा निर्देशित श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान, श्रीदिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी, कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ०प्र०)। जिसमें प्राचीन-हस्तलिखित हजारों पाण्डु लिपियाँ एवं प्राचीन-अर्वाचीन प्रकाशित-उपलब्ध-अनुपलब्ध ग्रन्थ भण्डार में जैन धर्म पर शोध करने वालों के लिए उपलब्ध रहे एवं प्राचीन साहित्य-आगम-सिध्दान्त का संरक्षण-संवर्ध्दन हो। इसके लिए सकल जैन समाज मुनिश्री के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

निवेदक

श्री धर्मश्रुत शोध संस्थान, श्री दिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी, कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ०प्र०) - २८३२०३

नोटः - सम्पूर्ण कृति पढ़ने के बाद; अपनी समीक्षा, आलोचना निम्न पते पर अवश्य भेजें ——
(१) श्री धर्मश्रुत शोध संस्थान,
श्री दिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी, कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ० प्र०) - २८३२०३
(२) वास्ट जैन फाउण्डेशन, ५९/२, बिरहाना रोड, कानपुर (उ० प्र०) - २०८००१
मो० नं० - ०९९९७५४३४१५, ०९४५१८७५४४८

नोटः - यदि यह अनुत्तर जिज्ञासा कृति; आपको अच्छी लगे तो आप सभी को पढ़ायें। उत्सव, व्रत, त्यौहार, जन्म दिवस, पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में बाँटने एवं छपवाने योग्य समझें तो लागत मूल्य पर छपवाने के लिए संस्था से सम्पर्क करें। यदि कोई ट्रस्ट-न्याय-फाउण्डेशन आदि को छपवाना हो तो उनके नाम, चित्र परिचय सहित हम छपवा सकते हैं।

सम्पर्क सूत्रः - ०९९९७५४३४१५, ०९४५१८७५४४८

जो पुस्तक पढ़ने योग्य है, वह खरीदने योग्य भी है ——

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

सम्पादकीय

– प्रज्ञाश्रमण मुनि अमितसागर

बचपन से हमने एक ही वाक्य सुना-पढ़ा-लिखा देखा है, विद्वानों, त्यागी-व्रतियों, मुनिराजों-आचार्यों एवं अन्य सभी धर्म-प्रचारकों के श्रीमुख से भी यही सुनते आ रहे हैं कि स्वाध्याय करो, क्योंकि 'स्वाध्यायः परमं तपः' इस स्वाध्याय तप से कर्मों की असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होती है, अतः सूत्र के अनुसार हम सभी ने शास्त्रों को पढ़ने का नाम ही स्वाध्याय है; ऐसा समझकर जो जहाँ; जैसा जो कुछ भी मिला, उसे ही मनमाने ढंग से अपने मन के अनुसार ही व्युत्पत्ति करके पढ़ने की प्रवृत्ति करने से ही हम स्वाध्यायी बन गए।

मात्र शास्त्र पढ़ना; फोटो का एलबम देखने के समान है कि किसकी फोटो में चेहरा-आभूषण आदि कैसे हैं ? लेकिन शास्त्र का स्वाध्याय करने का मतलब है; दर्पण देखना, स्वयं की वास्तविक छवि का अवलोकन, स्वयं के परिणामों के अध्याय (पाठ) का अध्ययन करना है।

स्वाध्याय परम तप है, इससे हम सबसे पहले 'तप' की व्युत्पत्ति-व्याख्या एवं महत्त्व को समझें **'कर्मक्षयार्थं तप्यते इति तपः'** जो कर्म क्षय के लिये तपा जाता है, उसे तप कहते हैं। इसके छह बहिरङ्ग एवं छह अन्तरङ्ग; ऐसे बारह भेद हैं।

अनशनाव-मौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त-शय्यासन कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ त० सू० अध्याय-९, सू० सं० १९)

ये छह बहिरङ्ग तप; छह अन्तरङ्ग तपों के साधक हैं, बिना साधन के साध्य की सिद्धि कभी नहीं हो सकती।

प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्त्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यानन्युत्तरम् ॥

त० सू० अध्याय - ९, सू० सं० २०

इस सूत्रानुसार सबसे पहले प्रायश्चित्त-तप द्वारा चित्त की शुद्धि परमावश्यक है। जब चित्त शुद्ध होगा तब सच्ची विनय-तप का प्रादुर्भाव होगा, सच्ची विनय से ही सच्ची वैयावृत्य-तप की अभिवृद्धि होगी, तब कहीं जाकर सम्यक् स्वाध्याय-तप का प्रारम्भ होगा, सच्चे स्वाध्याय से ही मोह-ममत्व को हटाते हुए व्युत्सर्ग-तप का उद्घाटन होगा, व्युत्सर्ग तप ही सम्यक् ध्यान तप को जन्म देगा, क्योंकि बाह्याभ्यन्तर ममत्व मिटे बिना; ध्यान तप की सिद्धि के बिना;

समस्त कर्मों की निर्जरा नहीं हो सकती है, अतः स्वाध्याय तप को मध्य में रखा है। जब प्रायश्चित-तप से चित्त परिशुद्ध होता है तब ज्ञानादि विनय के द्वारा स्वाध्याय करने से ही यथार्थ लाभ होता है अन्यथा प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त के बिना किया गया अकेला स्वाध्याय; मद, संघर्ष, विघटन को जन्म दे रहा है जो प्रत्यक्ष अनुभव-सिद्ध दिख भी रहा है।

जिस स्वाध्याय में ज्ञान विनय के आठ अङ्गों की परिपालना का अभाव है, उस स्वाध्याय से कर्मों की निर्जरा नहीं हो सकती, अतः ज्ञान-विनय के आठ भेदों के स्वरूप को जानना-समझना अत्यन्त आवश्यक है। भगवती आराधना में कहा है —

काले विणये उवधाणे, बहुमाणे तहेव णिण्हवणे ।
वंजण अत्थ तदुभये, विणओ णाणम्मि अट्ठ विहो ॥१२॥

(१) काल; (२) विनय; (३) उपधान; (४) बहुमान; (५) निह्नव; (६) व्यञ्जन शुद्धि; (७) अर्थ शुद्धि; (८) उभय शुद्धि; ये ज्ञान के विषय में आठ प्रकार की विनय है।

(१) काल - यहाँ काल शब्द से स्वाध्याय काल और वाचना काल ग्रहण किये गए हैं। काल में अध्ययन अर्थात् सन्ध्या (सन्धिकाल), अष्टमी-चतुर्दशी अर्थात् पर्व, अमावस्या-पूर्णिमा, अष्टाह्निका आदि । दिग्दाह-किसी दिशा में आग लगना, उल्कापात, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी, भूकम्प, सूतक-पातक आदि जो काल; स्वाध्याय में छोड़ने योग्य कहे हैं, उन कालों को छोड़कर किया गया अध्ययन कर्म को नष्ट करता है, अतः स्वाध्याय में काल की शुद्धि आवश्यक है।

(२) विनय - श्रुत और श्रुत के धारकों के माहात्म्य का स्तवन अर्थात् श्रुत और श्रुत के धारकों की भक्ति; विनय है। जो अशुभ कर्म को दूर करती है, वह विनय है।

(३) उपधान - उपधान का अर्थ अवग्रह है। जब तक आगम का यह अनुयोगद्वार (अध्याय या सन्दर्भ) समाप्त नहीं होता तब तक मैं अमुक वस्तु नहीं खाऊँगा या अनशन-चतुर्थ-षष्ठम उपवास करूँगा, इस प्रकार का संकल्प अवग्रह है। पं० टोडरमल जी आदि विद्वान; रस परित्याग आदि करके ही स्वाध्याय-लेखन आदि कार्य किया करते थे, अतः स्वाध्याय सिद्धि के लिए उपधान आवश्यक है।

(४) बहुमान - बहुमान का अर्थ सन्मान है, ग्रन्थ-शास्त्र को पढ़ने के पूर्व

स्वयं की शारीरिक शुद्धि करके पवित्र होना, दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक शास्त्र को उच्चासन पर विराजमान करना, शास्त्र के पृष्ठ (पन्ना) पलटते समय मुँह की लार आदि नहीं लगाना, शास्त्र जी जंघा पर नहीं रखना, शास्त्र जी पर कवर-जिल्द आदि चढ़ाना-पुराने-जीर्णशीर्ण अनुपयोगी शास्त्रों का शुद्धि पूर्वक अग्निसंस्कार करना आदि बहुमान है। मन को निश्चल करके सादर अध्ययन करना भी बहुमान है।

(५) निह्नव - निह्नव; अपलाप को कहते है यानि खुद-स्वयं कुछ जानते नहीं और कोई जानकर उसे बतलाए तो उसकी मानते भी नहीं, इसे ही अपलाप कहते हैं अथवा किसी गुरु के पास अध्ययन करके; अन्य किसी प्रसिद्ध गुरु के पास अध्ययन किया, ऐसा अन्य को गुरु कहना अपलाप हैं, ऐसे अपलाप से बचना चाहिए ।

(६) व्यञ्जन शुद्धि - व्यञ्जन; शब्द के प्रकाशन को कहते हैं, शब्द स्वयं दूसरों को ज्ञान कराने में हेतु हैं और स्वयं शब्द; श्रुत से ही वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानता है तथा दूसरों को ज्ञान कराता है।

गणधर आदि ने जैसे बत्तीस दोषों से रहित सूत्र रचे हैं, उनका वैसा ही पाठ पढ़ना व्यञ्जन शुद्धि है। व्यञ्ज्यते अर्थात् जिसके द्वारा जाना जाता है, ऐसा विग्रह करने पर ज्ञान शब्द से; शब्द-श्रुत का भी ग्रहण होता है, क्योंकि श्रुतज्ञान का मूल; शब्द है।

(७) अर्थ शुद्धि - व्यञ्जन शब्द की समीपता से अर्थ-शब्द; शब्द के वाच्य को कहता है, अतः अर्थ से सूत्रार्थ का ग्रहण होता है। सम्यक् रूप से सूत्र के अर्थ की निरूपणा में; निरूपणा का आधार अर्थ होता है, अतः निरूपणा की सच्चाई को अर्थशुद्धि कहते हैं अर्थात् सूत्र के अर्थ का यथार्थ कथन अर्थशुद्धि है।

(८) तदुभय शुद्धि - व्यञ्जनशुद्धि और अर्थशुद्धि को तदुभय-शुद्धि कहते हैं। एक व्यक्ति; सूत्र का अर्थ तो ठीक कहता है, किन्तु सूत्र अशुद्ध पढ़ता है, अतः व्यञ्जन शुद्धि कही है। दूसरा व्यक्ति; सूत्र शुद्ध पढ़ता है, लेकिन सूत्र का अर्थ अशुद्ध-अन्यथा कहता है, उसके निराकरण के लिए अर्थ शुद्धि कही है। तीसरा व्यक्ति; सूत्र को ठीक नहीं पढ़ता और सूत्र का अर्थ भी विपरीत करता है, इन दोनों की अशुद्धि दूर करने के लिए उभय शुद्धि कही है । यह आठ प्रकार का ज्ञानाभ्यास का विनयरूप परिकर आठ प्रकार के कर्मों का विनयन करता है अर्थात् उन्हें दूर करता है, इसलिए इसे विनय शब्द से सम्बोधन किया जाता है। इन आठ

प्रकार के ज्ञान विनय से ही स्वाध्याय की सिद्धि हो सकती है।

'स्वाध्याय' शब्द 'स्व आत्मने अध्येति इति स्वाध्यायः' अपनी आत्मा में अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। इस स्वाध्याय तप के पाँच भेद हैं —

वाचना पृच्छनानु-प्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः ॥ त०सू० अध्याय-९, सूत्र २५

(१) वाचना :- ग्रन्थ, अर्थ और दोनों का निर्दोष प्रदान करना वाचना है। वाचना से प्रज्ञा में अतिशय आता है, नये-नये शब्द एवं अर्थ की उपलब्धि होती है, स्वयं के शास्त्र पढ़ने से अन्यथा सुना-पढ़ा हुआ परिष्कृत हो जाता है, कई भूलें सुधर जाती हैं, अतः स्वयं ही शास्त्र की वाचना करना चाहिए ।

(२) पृच्छना :- संशय का उच्छेद करने के लिए अथवा निश्चय बल को पुष्ट करने के लिए, दूसरों को अनुयोग लाभ के लिए; प्रश्न करना पृच्छना है, अध्यवसाय को प्रशस्त करने के लिए पृच्छना स्वाध्याय किया जाता है।

(३) अनुप्रेक्षा :- जाने हुए अर्थ का मन में अभ्यास करना अनुप्रेक्षा है। अनुप्रेक्षा से परम संवेग जागृत होता है अर्थात् वस्तु स्वरूप की सच्चाई का पता चलता है, अतः अनुप्रेक्षा स्वाध्याय करना चाहिए ।

(४) आम्नाय :- उच्चारण की शुद्धि पूर्वक पाठ को पुनः-पुनः दोहराना आम्नाय स्वाध्याय है। उच्चारण में ह्रस्व, दीर्घ, विसर्ग, अनुस्वार, स्वराघात आदि का ध्यान रखने हुए गद्य-पद्य का शुद्ध उच्चारण करने से आम्नाय नाम का स्वाध्याय होता है, इससे तप की वृद्धि होती है।

(५) धर्मोपदेश :- धर्मकथा आदि चार प्रकार की सुकथाओं का अनुष्ठान करना धर्मोपदेश है अर्थात् धार्मिक नाटक-नृत्य, पूजा-विधान, व्रतों के माहात्म्य को बढ़ाने वाले प्रसङ्ग आदि उपस्थित करने से स्वयं के अतिचारों का शोधन होता है, अतः धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। सच्चे स्वाध्याय के लिए, सच्चे शास्त्रों की आवश्यकता है, अतः सच्चे शास्त्र का लक्षण स्वामी समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहा है —

आप्तोपज्ञ-मनुल्लंघ्य-, मदृष्टेष्ट विरोधकम् ।
तत्त्वोपदेश कृत्सार्वं, शास्त्रं कापथ घट्टनम् ॥९॥

जो सच्चे देव का कहा हुआ हो, वादी-प्रतिवादी से खण्डन नहीं होने वाला, प्रत्यक्ष, अनुमानादि के विरोध से रहित, वस्तु स्वरूप का उपदेश करने वाला, सब जीवों का कल्याण करने वाला मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला ही सच्चा शास्त्र है।

वर्तमान के कुछ विद्वान-साधुजन भी सच्चे-शास्त्रों पर अपनी टिप्पणी करते हैं कि कुछ आचार्यों पर अन्य मतधर्म का प्रभाव रहा है, अतः कई क्रियायें अन्य धर्मों से जैनधर्म में आचार्यों ने लिखी हैं। इस कुतर्क का विचार यह है कि जब सम्यग्दर्शन का अतिचार अन्य दृष्टि प्रशंसा, अन्य दृष्टि संस्तव है तब दिगम्बर जैनाचार्य अन्य धर्म की प्रशंसा, संस्तव क्यों करते ? यदि फिर भी आप ऐसा मानते हैं कि इस चर्या-क्रिया को अन्य धर्मों से जैनाचार्यों ने लिया है तब आप; अपने आचार्यों को चोर बताने का प्रयास कर रहे हैं जो हमारी नितान्त भूल है।

प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थ-टीकाओं सहित जो बहुप्रचलित एवं अप्रकाशित हैं, उन्हें पुनः प्रकाश में लाने का प्रयत्न चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ०प्र०) कर रहे हैं, संयोजक के रूप में वास्ट जैन फाउण्डेशन, कानपुर (उ०प्र०) हैं तथा जो भी दान-दाता आगम-शास्त्र प्रकाशन में अपना अमूल्य द्रव्य खर्च कर रहे हैं, वे सब अनन्त आशीर्वाद के पात्र हैं।

ॐ नमः

भाद्र० शु० पूर्णिमा १५.०९.२००८,

सोनीपत (हरियाणा)

हमारी कामना

जिस प्रकार अनगढ़ पाषाण को तरासकर एक कुशल शिल्पकार सुन्दर मूर्ति का रूप देता है। उसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं को शब्द-शिल्प में गढ़ना भी एक कला है। इस कला से पारङ्गत श्रमणरत्न गुरुदेव मुनिश्री १०८ अमित सागर जी महाराज के 'रजत दीक्षा जयन्ती' पर हमें याद आती है गुरुदेवश्री करीव १३ वर्ष पूर्व सन् १९९६ में कानपुर का प्रथम प्रवास और उनके आशीष एवं सान्निध्य से प्रारम्भ हुआ 'वास्ट जैन फाउण्डेशन' परिवार। हमें याद है गुरुवर द्वारा हमें आशीष के रूप में कहा गया ——

'जब आप इन दुनियाँ को छोड़कर चले जायेंगे,
तब दुनियाँ के समस्त धन यहीं धरे रह जायेंगे ।
केवल जाएगा आपके साथ ज्ञान-धन पर लोक में,
अतः कर लो पुरुषार्थ ज्ञान-धन के लिये इस लोक में ॥'

धर्मानुरागी भव्यात्माओ !

''जिस विशुद्ध धर्म की हम आराधना करते हैं, उस धर्म के जीवन-चरित्र को यदि हम नहीं जान सके तो उस आराधना का कोई फल नहीं ।''

अतः इस विशुद्ध धर्म के जीवन परिचय के लिए आप स्वयं अच्छे आगम-साहित्य का अध्ययन करें एवं दूसरों को करने की प्रेरणा दें।

इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु हमारा अनुग्रह आशीष है।

ॐ नमः (२७-३-९७) सम्मेदाचल

पूज्य मुनिश्री के साहित्य संयोजक का कार्य पिछले १२ वर्षों से करती आ रहे हैं एवं साहित्य प्रकाशन का कार्य श्री अनिल कुमार जैन, चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा द्वारा होता है। हम; सभी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

वास्ट जैन फाउण्डेशन
५९/२, बिरहाना रोड, कानपुर - २०८००१
फोनः ०५१२ - २३५२२३९
E-mail: tribhuwan vast@yahoo.com

दो शब्द

शब्दों में अपार शक्ति है। पुस्तकें; शब्दों का भण्डार होती है, अरिहन्त का एक शब्द भी हमारे जीवन में परिवर्तन लाने के लिए पर्याप्त होता है तब फिर यह धर्मग्रन्थ एवं धार्मिक गुरु तो हमारे जीवन को अनमोल बना सकते हैं। हमारे पूज्य आचार्यों ने अनेक ग्रन्थों में अरिहन्त के शब्दों को; उनकी ध्वनि को हमारे कल्याण के लिए लिपिबद्ध किया है। वर्तमान में तेज गति से चलायमान हमारे जीवन में प्रभु वीतराग के शब्दों का चरितार्थ होना कठिन हो गया है। भौतिक इच्छाओं ने मानसिक शान्ति और आध्यात्मिक जीवन की परिभाषा को बदल दिया है।

इस स्थिति में हमें उनका सहारा चाहिए, जिन्होंने धर्मग्रन्थों का मात्र अध्ययनमनन ही नहीं किया है अपितु एक-एक क्षण; शब्द-आगम के अनुसार जिया है, आचरण में उतार लिया है। ऐसे ही प्रातः स्मरणीय, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प. पू. मुनिश्री अमितसागर जी महाराज, जिन्होंने अपनी साधना काल की रजत जयन्ती को पूर्ण कर लिया है तथा अनेकानेक ग्रन्थों के सार को अनुभव में परिणत कर लिया है। संसार में रहकर भी धर्माचरण को व्यवहारिकरूप में किस प्रकार करना है एवं शब्द-शब्द में छिपे रहस्य को सहज भाषा में समझाना मुनिश्री की शैली की विशेषता है।

मुनिश्री के साहित्य के सन्दर्भ में कुछ लिखना, सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही है। प्रायोगिक चिन्तन मुनिश्री के साहित्य का आधार है जो जैनधर्म के सिद्धान्तों का अनुशरण करता है। रोचक घटनाओं और उदाहरणों में जीवन के गहरे रहस्य छिपे रहते हैं, पढ़ते-पढ़ते कब मुनिश्री के सन्देश हृदय में अपना स्थान बना लेते हैं, पता ही नहीं चलता ।

मुनिश्री द्वारा लिखित बहुप्रसारित कृति 'मन्दिर' जिसकी लगभग दो लाख प्रति अनेकों भाषाओं में देश-विदेश में सराही गयी है, मुनिश्री की श्रुतविद्या का उदाहरण मात्र है। अन्तरङ्ग के रङ्ग, आँखिन देखी आत्मा, अनुत्तर यात्रा ऐसी कृतियाँ हैं जो निःसंदेह आने वाले समय में ज्ञान पिपासुओं के लिए शोध का केन्द्र बनेंगी । 'धर्म विज्ञान में सम्मेद शिखर जी' एवं 'अजेय दिगम्बरत्व जय गोमटेश' जैसे लेख; जैन एवं जैनतर समुदाय के लिये दिगम्बर जैन तीर्थों की प्राचीनता और वैज्ञानिक महत्त्व के ठोस प्रमाण होंगे ।

संस्कृत के पाठ पढ़ना और उनका शुद्ध उच्चारण आज की युवा पीढ़ी

के लिये दुरुह कार्य है, परन्तु मुनिश्री ने इस दिशा में ऐसा कार्य कर दिया है। जो जैन शासन के मूल पाठ; जैसे तत्त्वार्थ सूत्र, भक्तामर स्तोत्र और द्रव्य संग्रह जैसे ग्रन्थों को युवा वर्ग के मुखारविन्द पर जीवन्त रखेगा। 'सरल उच्चारण पाठ संग्रह' नामक पुस्तक में मुनिश्री ने इन पाठों को इस तरह संयोजित किया है कि पाठक सहजता से पाठ कर सकें। निरन्तर कक्षाओं में मुनिश्री का उच्चारण सिखाना, मुनिश्री की शुद्ध उच्चारण के प्रति चिन्ता भी प्रकट करता है।

विगत १८ वर्षों से मुनिश्री के साहित्य के प्रकाशन का कार्य करते हुए हम गौरवान्वित महसूस करते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि जिनवाणी और जिनशासन की सेवा के इस अभिनव एवं महान कार्य में मुनिश्री का आशीर्वाद और वास्ट जैन फाउण्डेशन, कानपुर का सहयोग हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है। जिसके प्रति हम आभार व्यक्त करते हैं।

जिनवाणी के प्रचार-प्रसार एवं संस्कारों का भावी पीढ़ी में सञ्चार हो, यही हमारा उद्देश्य है। साहित्य-आगम के प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों का हमें तन-मन-धन का सहयोग मिलता है, वे सब धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रकाशक:

अनिल कुमार जैन,
चन्द्रा कॉपी हाउस (प्रा०लि०)
आगरा (उ०प्र०)

प्रज्ञाश्रमण मुनि

मुनि नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव-विरचित

द्रव्य संग्रह

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरण

जीव-मजीवं दव्वं, जिणवर-वसहेण जेण णिद्-दिट्ठं।
देविंद-विंद वंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥

अन्वयार्थ - (जेण) जिन (जिणवर-वसहेण) जिनवर वृषभ ने (जीव-मजीव) जीव और अजीव (दव्वं) द्रव्य को (णिद्-दिट्ठं) कहा है, (देविंद-विंद वंदं) देव-इन्द्रों के समूह से वन्दनीय (तं) उन जिनवर वृषभ को (सव्वदा) हमेशा (सिरसा) मस्तक नवाकर (वंदे) नमस्कार करता हूँ।

अर्थ - जिन; वृषभनाथ भगवान ने जीव और अजीव द्रव्यों का निरूपण किया था उनको; मैं (नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव) सदा मस्तक झुका कर नमस्कार करता हूँ।

प्रश्नः -इस ग्रन्थ का नाम द्रव्य संग्रह क्यों है ?

उत्तरः- इस ग्रन्थ में; छह द्रव्यों के स्वरूप का संग्रह किया गया है, अतः इस ग्रन्थ का नाम द्रव्य संग्रह है।

प्रश्नः -मङ्गलाचरण में किनको नमस्कार किया है ?

उत्तरः- वृषभदेव को या समस्त तीर्थङ्करों को या समस्त आप्तों को।

प्रश्नः -जिनवर-वृषभ किन्हें कहते हैं ?

उत्तरः- अरिहन्तदेव को; केवली-भगवान को तथा तीर्थङ्कर-केवली को जिनवर-वृषभ कहते हैं।

प्रश्नः -जिन; किन्हें कहते हैं ?

उत्तरः- जिन; अविरतिसम्यग्दृष्टि से छठवें गुणस्थानवर्ती तक के जीव को जिन कहते हैं। यहाँ द्रव्यानुयोग की अपेक्षा इन्हें 'जिन' कहा है।

प्रश्नः- जिनवर किन्हें कहते हैं ?

उत्तरः- जिन में भी जो श्रेष्ठ हैं यानि गणधरों को जिनवर कहते हैं।

प्रश्नः- मूल द्रव्य कितने हैं ?

उत्तरः- मूल द्रव्य दो हैं —— १. जीव द्रव्य; २. अजीव द्रव्य ।

प्रश्नः -जीव किसे कहते हैं ?

उत्तरः - जिनमें चेतना गुण-लक्षण पाया जाता है, उन्हें जीव कहते हैं, **जैसे** - मनुष्य, पशु-पक्षी, देव, नारकी आदि अथवा जिनमें सुख, सत्ता, चैतन्य और बोध हो, उन्हें जीव कहते हैं।

प्रश्नः -अजीव किसे कहते हैं ? भेद सहित नाम बताओ ?

उत्तरः- जिनमें ज्ञान, दर्शन, चेतना नहीं हो, वह अजीव है। अजीव के पाँच भेद हैं——(१) पुद्गल; (२) धर्म; (३) अधर्म; (४) आकाश; (५) काल ।

प्रश्नः- तीर्थङ्कर कितने इन्द्रों से वन्दनीय हैं ?

उत्तरः- तीर्थङ्कर सौ इन्द्रों से वन्दनीय हैं।

प्रश्नः- सौ इन्द्र कौन से हैं ?

उत्तरः- भवणालय चालीसा, विंतर देवाण होंति बत्तीसा ।
कप्पामर चउबीसा, चंदो सूरो णरो तिरिओ ।। क्षेपक ।।

अर्थः- भवनवासियों के ४०; व्यन्तरों के ३२; कल्पवासियों के २४; ज्योतिषियों के २ - चन्द्र और सूर्य; मनुष्यों का १- चक्रवर्ती तथा पशुओं का १- सिंह, ऐसे कुल १०० (४०+३२+२४+२+१+१= १००) इन्द्र हैं।

प्रश्नः- सिंह; हिंसक है फिर भी उसको इन्द्र क्यों कहा है ?

उत्तरः- सिंह की कई विशेषताएँ हैं, **जैसे** ——

१. पूरे जीवन में एक ही बार सम्भोग करता है।

२. अपना शिकार स्वयं करता है, मरा हुआ नहीं खाता ।

३. किसी जीव को धोके से नहीं मारता, चेतावनी देकर मारता है।

४. उसका पेट भरा होने पर किसी को नहीं मारता, हाँ ! दूसरों से खतरा होने पर अपने बचाव के लिए उसे घायल कर सकता है।

५. मार्ग में चलते हुए अपनी पूँछ को अपनी ही पीठ पर उठाकर चलता है। इन सभी कारणों से सिंह को इन्द्र कहा है।

प्रश्नः- इस ग्रन्थ में कितने अध्याय हैं ?

उत्तरः- इस ग्रन्थ में तीन अध्याय हैं— १. जीव-अजीव अध्याय; २. आस्रव आदि तत्त्व वर्णन अध्याय; ३. मोक्षमार्ग प्रतिपादक अध्याय ।

प्रश्नः- प्रथम अध्याय में कितनी गाथाएँ हैं ?

उत्तरः- प्रथम अध्याय में २७ गाथाएँ हैं।

प्रश्नः- प्रथम अध्याय में कितने अधिकार हैं ?

उत्तरः- प्रथम अध्याय में दो अधिकार हैं— पहला; जीव अधिकार, दूसरा; अजीव अधिकार।

प्रश्नः- दोनों अधिकारों में निरूपित विषय बताइये ?

उत्तरः- दोनों अधिकारों में पहली गाथा मङ्गलाचरणरूप है। गाथा संख्या २ से १४ तक जीव द्रव्य का व्यवहार और निश्चय; दोनों नयों से विवेचन है। गाथा संख्या १५ से २७ तक अजीव द्रव्यों का विवेचन है। उनमें भी गाथा संख्या १५ में अजीव द्रव्य के भेद; १६ में पुद्‌गल द्रव्य; १७ में धर्म द्रव्य; १८ में अधर्म द्रव्य; गाथा संख्या १९-२० में आकाश द्रव्य; २१-२२ में काल द्रव्य; २३-२४ तक अस्तिकायों का वर्णन; गाथा संख्या २५ में द्रव्यों के प्रदेशों की संख्या; २६ में पुद्‌गल का बहुप्रदेशीपना उपचार से तथा २७वीं गाथा में प्रदेश का लक्षण है।

पहला; जीवाधिकार

जीव के नव अधिकार

जीवो उवओग-मओ, अमुत्ति कत्ता सदेह-परिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्स-सोड्ढ-गई ॥२॥

अन्वयार्थ- (सो) वह जीव; (जीवो) जीने वाला (उवओग-मओ) उपयोगमयी (अमुत्ति) अमूर्तिक (कत्ता) कर्त्ता (सदेहपरिमाणो) अपने शरीरप्रमाण (भोत्ता) कर्मों के फल का भोक्ता (विस्ससा) स्वभाव से (उड्ढगई) ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

अर्थ - यह जीव; प्राणों से युक्त है, अतः जीव है , जानने-देखने वाला होने से उपयोगमयी है, अमूर्तिक है, कर्त्ता है, अपने-अपने शरीर प्रमाण है, संसारी है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला है।

प्रश्नः- जीव का वर्णन कितने अधिकारों में किया गया है ?

उत्तरः- जीव का वर्णन नौ अधिकारों में किया गया है।

प्रश्नः- जीव के नौ अधिकारों के नाम बताइये ?

उत्तरः- १. जीव अधिकार; २. उपयोग अधिकार; ३. अमूर्तिक अधिकार; ४. कर्त्ता अधिकार; ५. स्वदेह परिमाण अधिकार; ६. भोक्ता अधिकार; ७. संसारित्व अधिकार; ८. सिद्धत्व अधिकार; ९. ऊर्ध्वगमन अधिकार ।

पहला; जीव अधिकार

तिक्काले चदु पाणा, इंदिय बल-माउ आण-पाणो य ।
ववहारा सो जीवो, णिच्छय-णयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

अन्वयार्थ- (व्यवहारा) व्यवहार नय से (जस्स) जिसके (तिक्काले तीनों) कालों में (इन्द्रिय बल-माउ) इन्द्रिय, बल, आयु (आणपाणोय और श्वाससोच्छ्वास (चदुपाणा) चार प्राण (सन्ति) हैं (दु) और (णिच्छय णयदो) निश्चयनय से (जस्स) जिसके (चेदणा चेतना) [है] (सो) वह (जीवो) जीव है।

अर्थ - व्यवहार नय से जिसके तीनों कालों में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास; ये चार प्राण हैं और निश्चय नय से जिसके चेतना है, वह जीव है।

प्रज्ञाश्रमण मुनि

प्रश्नः- नय किसे कहते हैं ? उसके मुख्य रूप से कितने भेद हैं ?

उत्तरः- वक्ता के अभिप्राय को नय कहते हैं या वस्तु के स्वरूप को समझाने में जो सहायक हो, उसे नय कहते हैं । इसके मुख्य रूप से दो भेद हैं — **पहला;** व्यवहार नय, **दूसरा;** निश्चय नय ।

प्रश्नः- व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

उत्तरः- वस्तु के अशुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाले ज्ञान को व्यवहार नय कहते हैं, **जैसे** - व्यवहार में हम लोग मिट्टी के घड़े को घी का घड़ा कहते हैं।

प्रश्नः- तीन काल कौन से हैं ?

उत्तरः- १. भूत काल; २. भविष्य काल; ३. वर्तमान काल ।

प्रश्नः -मूल प्राण कितने हैं व उनके उत्तर-भेद कौन-कौन से हैं ?

उत्तरः- मूल प्राण चार हैं — १. इन्द्रिय; २.बल; ३ आयु; ४.श्वासोच्छ्वास; इनके उत्तर भेद १० हैं — **पाँच इन्द्रियाँ** - १.स्पर्शन; २.रसना; ३.घ्राण; ४.चक्षु; ५. कर्ण । **तीन बल** - १.मनबल; २.वचनबल; ३.कायबल। **एक आयु** और एक **श्वासोच्छ्वास** ।

प्रश्नः- व्यवहार नय से जीव का लक्षण बताइये ?

उत्तरः- जिसमें तीनों कालों में चार प्राण पाये जाते हैं, वह व्यवहार नय से जीव है।

प्रश्नः- निश्चय नय से जीव का लक्षण बताइये ?

उत्तरः- जिसमें चेतना पायी जाती है, वह निश्चय नय से जीव है।

प्रश्नः- निश्चय नय किसे कहते हैं ?

उत्तरः- वस्तु के शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाले ज्ञान को निश्चय नय कहते हैं, **जैसे** - मिट्टी के घड़े को ही मिट्टी का घड़ा कहना ।

प्रश्नः- एकेन्द्रिय जीव के कितने प्राण हैं ?

उत्तरः- एकेन्द्रिय जीव के चार प्राण होते हैं — **एक** स्पर्शन इन्द्रिय, **एक** कायबल, **एक** आयु और **एक** श्वासोच्छ्वास ।

प्रश्नः- द्वीन्द्रिय जीव के कितने प्राण हैं ?

उत्तरः- स्पर्शन एवं रसना; ये **दो** इन्द्रिय, **एक** वचनबल, **एक** कायबल, **एक** आयु, **एक** श्वासोच्छ्वास; कुल ६ प्राण होते हैं।

प्रश्नः- तीन इन्द्रिय जीव के कितने प्राण हैं ?

उत्तरः- तीन इन्द्रिय जीव के ७ प्राण होते हैं — स्पर्शन, रसना, घ्राण; ये **तीन** इन्द्रियाँ, **एक** वचनबल, **एक** कायबल, **एक** आयु और **एक** श्वासोच्छ्वास ।

प्रश्नः- चार इन्द्रिय जीव के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तरः- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु; ये **चार** इन्द्रियाँ, **एक** वचनबल, एक कायबल, एक आयु और एक श्वासोच्छ्वास — कुल ८ प्राण; चार इन्द्रिय जीव के होते हैं।

प्रश्नः -असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तरः- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण; ये **पाँच** इन्द्रियाँ, **एक** वचनबल, **एक** कायबल, **एक** आयु और **एक** श्वासोच्छ्वास — कुल ९ प्राण; असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के होते हैं।

प्रश्नः- संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तरः- दस प्राण होते हैं— पाँच इन्द्रिय; तीन बल; एक आयु और एक श्वासोच्छ्वास ।

प्रश्नः- हम सबके कितने प्राण हैं ? क्यों ?

उत्तरः- हम सबके १० प्राण हैं, क्योंकि हम पञ्चेन्द्रिय सैनी जीव हैं।

प्रश्नः- अरिहन्त भगवान के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तरः- अरिहन्त भगवान के ४ प्राण होते हैं - वचनबल, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास ।

प्रश्नः- अरिहन्त भगवान के ४ प्राणों की सिद्धि करो ?

उत्तरः- अरिहन्त भगवान की दिव्यध्वनि खिरती है, अतः **एक** वचनबल है। शरीर सहित होने से **एक** कायबल है। उनके मनुष्य जीवन

है, अतः **एक** मनुष्य आयु प्राण है। उनका श्वास; ब्रह्मरंध्र (तालु रंध्र) से आता है, अतः उनके **एक** श्वासोच्छ्वास है। इस प्रकार अरिहन्त भगवान के ४ प्राण होते हैं।

प्रश्नः- सिद्ध भगवान के कितने प्राण होते हैं?

उत्तरः- सिद्ध भगवान के १० प्राणों में से कोई भी प्राण नहीं हैं, उनके एक चेतना प्राण है।

दूसरा; उपयोग अधिकार के भेद एवं दर्शनोपयोग के भेद

उवओगो दु-वियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही, दंसण-मध केवलं णेयं ॥४॥

अन्ययार्थ - (उवओगो) उपयोग (दु-वियप्पो) दो प्रकार का है—(दंसण) दर्शन (णाणं च) और ज्ञान (दंसणं) दर्शन (चदुधा) चार प्रकार का है (चक्खु) चक्षुदर्शन (अचक्खु) अचक्षुदर्शन (ओही) अवधिदर्शन (अध) और (केवलं दंसणं) केवलदर्शन (णेयं) जानना चाहिए।

अर्थ- उपयोग दो प्रकार का है— १. दर्शनोपयोग; २. ज्ञानोपयोग; उनमें दर्शनोपयोग चार प्रकार का होता है— १. चक्षदर्शनोपयोग; २. अचक्षु-दर्शनोपयोग, ३.अवधिदर्शनोपयोग; ४.केवलदर्शनोपयोग।

प्रश्नः- उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तरः- चैतन्यानुविधियी अर्थात् चेतना के साथ रहने वाले आत्मा के परिणाम को उपयोग कहते हैं।

प्रश्नः- उपयोग का शाब्दिक अर्थ क्या है?

उत्तरः- उप याने समीप या निकट, योग का अर्थ है सम्बन्ध। जिसका आत्मा से निकट सम्बन्ध है, उसे उपयोग कहते हैं। ज्ञान-दर्शन का आत्मा से निकट सम्बन्ध है, अतः इन दोनों को उपयोग कहते हैं।

प्रश्नः- दर्शनोपयोग किसे कहते हैं?

उत्तरः- जो वस्तु के सामान्य अंश को ग्रहण करे, उसे दर्शनोपयोग कहते हैं।

प्रश्नः- ज्ञानोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो वस्तु के विशेष अंश को ग्रहण करे, उसे ज्ञानोपयोग कहते हैं।

प्रश्नः -चक्षुदर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तरः- चक्षु इन्द्रिय से उत्पन्न होने वाले ज्ञान के पहले जो वस्तु का सामान्य प्रतिभास होता है, उसे चक्षुदर्शनोपयोग कहते हैं।

प्रश्नः- अचक्षुदर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तरः- चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर; शेष स्पर्शन, रसना, घ्राण और कर्ण तथा मन से होने वाले ज्ञान के पहले जो वस्तु का सामान्य आभास होता है, उसे अचक्षुदर्शनोपयोग कहते हैं।

प्रश्नः- अवधिदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तरः- अवधिज्ञान के पहले जो वस्तु का सामान्य होता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

प्रश्नः- केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तरः- केवलज्ञान के साथ होने वाले वस्तु के सामान्य आभास को केवलदर्शन कहते हैं।

विशेषः - चक्षु , अचक्षु , अवधि; ये तीन दर्शन; ज्ञान के पहले होते हैं, लेकिन केवलदर्शन; केवलज्ञान के साथ ही होता है।

ज्ञानोपयोग के भेद एवं नाम

णाणं अट्ठ वियप्पं, मदि सुद ओही अणाण-णाणाणी ।
मणपज्जव केवल-मवि, पच्चक्ख परोक्ख भेयं च ।।५।।

अन्वयार्थ- (णाणं) ज्ञान (अट्ठ वियप्पं) आठ प्रकार का है (अणाण-णाणाणि) अज्ञान-रूप और ज्ञानरूप (मदिसुदओही) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान (मणपज्जव) मनःपर्ययज्ञान (केवलं) केवलज्ञान (अवि)

प्रज्ञात्मभाव मुनि

और वही ज्ञानोपयोग (पच्चक्ख परोक्खभेयं च) प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है।

अर्थ - ज्ञानोपयोग; अज्ञान और ज्ञानरूप से आठ प्रकार का है — १. कुमतिज्ञान; २. कुश्रुतज्ञान; ३. कुअवधिज्ञान; ४. मतिज्ञान; ५. श्रुतज्ञान; ६. अवधिज्ञान; ७. मनःपर्ययज्ञान और ८. केवलज्ञान। वही ज्ञानोपयोग; प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है।

प्रश्नः- कुज्ञान कितने हैं?

उत्तरः- कुज्ञान तीन हैं— १. कुमति; २. कुश्रुत; ३. कुअवधि (विभङ्ग)।

प्रश्नः- सम्यक् ज्ञान कितने हैं?

उत्तरः- सम्यक् ज्ञान पाँच हैं— १. मतिज्ञान; २. श्रुतज्ञान; ३. अवधिज्ञान; ४. मनःपर्ययज्ञान; ५. केवलज्ञान।

प्रश्नः- मतिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तरः- पाँच इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान; मतिज्ञान कहलाता है।

प्रश्नः- श्रुतज्ञान किसे कहते हैं।

उत्तरः- मतिज्ञान पूर्वक होने वाला ज्ञान; श्रुतज्ञान कहलाता है।

प्रश्नः- अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तरः- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा पूर्वक जो ज्ञान; रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है, वह अवधिज्ञान है।

प्रश्नः -मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तरः- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा पूर्वक जो ज्ञान; दूसरे के मन में तिष्ठते रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है, उसे मनः-पर्ययज्ञान कहते हैं।

प्रश्नः- केवलज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तरः- त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों और उनकी समस्त पर्यायों को एक साथ जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

प्रज्ञाश्रमण मुनि

प्रश्नः - मति-श्रुत-अवधिज्ञान सच्चे और झूठे कैसे होते हैं ?

उत्तरः - ये तीनों ज्ञान जब सम्यग्दृष्टि के होते हैं तब सत्य कहलाते हैं और जब मिथ्यादृष्टि के होते हैं तब मिथ्या या झूठे कहलाते हैं।

प्रश्नः - प्रत्यक्षज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तरः - इन्द्रिय आदि की सहायता के बिना; सिर्फ आत्मा से होने वाला ज्ञान; प्रत्यक्ष ज्ञान है।

प्रश्नः - परोक्षज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तरः - इन्द्रिय और आलोक (प्रकाश) आदि की सहायता से जो ज्ञान होता है, उसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं। इसका दूसरा नाम सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी है।

प्रश्नः - एक व्यक्ति आँखों से मकान को प्रत्यक्ष देख रहा है, उनका ज्ञान; प्रत्यक्ष है या परोक्ष ?

उत्तरः - इन्द्रियों की सहायता से जो ज्ञान हो रहा है, इसलिए परोक्ष है।

प्रश्नः - एक सम्यग्दृष्टि; माँ को माँ कहता है, भूल से माँ को बहन भी कहता है, उसका ज्ञान; सम्यक् है या मिथ्या ?

उत्तरः - सम्यग्दर्शन का आश्रय होने से सम्यग्दृष्टि का ज्ञान सम्यक्ज्ञान है।

प्रश्नः - एक मिथ्यादृष्टि; साँप को साँप और रस्सी को रस्सी जानता है, उसका ज्ञान; सम्यक् है या मिथ्या ?

उत्तरः - मिथ्यादृष्टि का ज्ञान; मिथ्या ही है, क्योंकि वह साँप से भयभीत रहता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि में सप्त भय रहते हैं।

प्रश्नः - प्रत्यक्ष ज्ञान कौन-कौन से हैं ?

उत्तरः - अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान; ये तीन प्रत्यक्ष ज्ञान हैं। इनमें भी अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान; विकलपारमार्थिक हैं और केवलज्ञान सकल-पारमार्थिक प्रत्यक्ष है अथवा अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान; विकल (एकदेश) प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान; सकल

(सर्वदेश) प्रत्यक्ष है।

ज्ञान-दर्शनोपयोग का नयापेक्षया कथन

अट्ठ चदु णाण दंसण, सामण्णं जीव लक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्ध-णया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ।।६।।

अन्वयार्थ - (ववहारा) व्यवहार नय से (अट्ठ चदु णाण दंसण) आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन (सामण्णं) सामान्य से (जीव लक्खणं) जीव का लक्षण (भणियं) कहा गया है (पुण) और (सुद्ध-णया) शुद्ध निश्चय नय से (सुद्धं) सुद्ध (दंसणं) दर्शन (णाणं) ज्ञान (जीवलक्खणं भणियं) जीव का लक्षण कहा गया है।

अर्थ - व्यवहार नय से आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन; सामान्य से जीव का लक्षण कहा गया है और शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध-दर्शन और शुद्ध-ज्ञान जीव का लक्षण कहा गया है।

प्रश्नः- व्यवहार नय (सामान्य) से जीव का लक्षण क्या है?

उत्तरः- व्यवहार नय से आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन; जीव का लक्षण है।

प्रश्नः -शुद्ध निश्चय नय से जीव किसे कहते हैं?

उत्तरः- जिसमें शुद्ध-दर्शन और शुद्ध-ज्ञान पाया जाता है, शुद्ध निश्चय नय से वह जीव है।

प्रश्नः -शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तरः- पर-सम्बन्ध से रहित; वस्तु के गुणों के कथन करने वाले ज्ञान को शुद्ध निश्चय नय कहते हैं।

प्रश्नः -व्यवहार नय, अशुद्ध निश्चय नय एवं शुद्ध निश्चय नय में क्या भेद हैं?

उत्तरः- व्यवहार नय; वस्तु के अशुद्ध स्वरूप को ग्रहण करता है। **जैसे**- मिट्टी के घड़े को भी घी का घड़ा कहना; चूँकि घड़ा तो मिट्टी का ही बना है, लेकिन उसमें घी रखने से उसे घी का घड़ा कहते हैं।

अशुद्ध निश्चय नय; वस्तु स्वरूप का निश्चय होने पर भी अशुद्धता रहती है, **जैसे** - गाय का घी, भैंस का घी, घी है; यह निश्चय है, लेकिन गाय, भैंस का है, अतः अशुद्ध हैं, क्योंकि गाय या भैंस स्वयं घी नहीं बनीं; उनके दूध से घी बना है, इसलिये निश्चय हैं, क्योंकि दूध से ही घी बनता है, पानी से नहीं।

शुद्ध निश्चय नय; वस्तु का कथन निर्पेक्ष होता है। इसमें घड़ा, गाय, भैंस आदि के सम्बोधन-सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं; **मात्र "घी" रह जाता है,** ऐसा ही शुद्ध निश्चय नय का स्वरूप है।

तीसरा; अमूर्ति अधिकार

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ।।७।।

अन्वयार्थ - (णिच्छया) निश्चय नय से (जीवे) जीव में (पंच वण्ण) पाँच वर्ण (पंच रस) पाँच रस (दो गंध) दो गन्ध (अट्ठ फासा) और आठ स्पर्श (णो) नहीं (सन्ति) हैं (तदो) इसलिए (सो) वह (अमुत्ति) अमूर्तिक है (ववहारा) व्यवहार नय से (बंधादो) कर्मबन्ध की अपेक्षा (मुत्ति) मूर्तिक [अत्थि] है।

अर्थ - निश्चय नय से जीव में; पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श नहीं हैं, इसलिए वह अमूर्तिक है। व्यवहार नय से कर्मबन्ध की अपेक्षा जीव मूर्तिक है।

प्रश्नः - मूर्तिक किसे कहते हैं?

उत्तरः - जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाया जाता है, उसे मूर्तिक कहते हैं।

प्रश्नः - अमूर्तिक किसे कहते हैं?

उत्तरः - जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण नहीं पाये जाते हैं, उसे अमूर्तिक कहते हैं।

प्रश्नः - जीव मूर्तिक है या अमूर्तिक?

उत्तरः- जीव मूर्तिक भी और अमूर्तिक भी है ।

प्रश्नः- जीव अमूर्तिक किस अपेक्षा से है ? और क्यों है ?

उत्तरः- निश्चय नय से जीव अमूर्तिक है, क्योंकि उसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण नहीं पाये जाते हैं, अतः जीव अमूर्तिक है।

प्रश्नः - जीव मूर्तिक किस अपेक्षा से है ?

उत्तरः- संसारी जीव; व्यवहार नय से मूर्तिक है, क्योंकि यह अनादिकाल से कर्मों से बँधा हुआ है। कर्म पुद्‌गल है और पुद्‌गल मूर्तिक है, मूर्तिक के साथ रहने से अमूर्तिक आत्मा भी मूर्तिक कहा जाता है।

प्रश्नः- यदि आत्मा अमूर्तिक है तो मूर्तिक कैसे हो सकता है और यदि मूर्तिक है तो अमूर्तिक कैसे ?

उत्तरः-जैसे- अनेकान्त सिद्धान्त से एक ही राम; पिता भी थे और पुत्र भी थे अपेक्षाकृत कथन है। पिता दशरथ की अपेक्षा राम; पुत्र थे और लव-कुश पुत्रों की अपेक्षा पिता भी, इसमें कोई विरोध नहीं प्रतीत होता है। इसी प्रकार आत्मा के शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर वह अमूर्तिक है और कर्म-पुद्‌गलमय अशुद्ध स्वरूप की अपेक्षा मूर्तिक है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

प्रश्नः -स्पर्श किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उत्तरः- छूने पर जो पदार्थ का ज्ञान होता है, उसे स्पर्श कहते हैं, वह आठ प्रकार का होता है— हल्का, भारी, ठण्डा, गरम, रूखा, चिकना, कड़ा, नरम ।

प्रश्नः- रस किसे कहते हैं, भेद सहित बताइये ?

उत्तरः- रस; स्वाद को कहते हैं और उसके पाँच भेद हैं — खट्टा, मीठा, कड़ुआ, चरपरा और कषायला ।

प्रश्नः -गन्ध किसे कहते है, भेद सहित बताइये ?

उत्तरः- गन्ध; महक को कहते हैं, वह दो प्रकार की होती है—सुगन्ध

और दुर्गन्ध ।

प्रश्नः- वर्ण किसे कहते हैं तथा इसके कितने भेद हैं ?

उत्तरः- वर्ण; रङ्ग को कहते हैं। रङ्ग पाँच प्रकार के होते हैं छोटा काला, पीला, नीला, लाल और सफेद ।

प्रश्नः -हमारा आत्मा मूर्तिक है या अमूर्ति है, क्यों ?

उत्तरः- हमारा आत्मा मूर्तिक है, क्योंकि हम अभी कर्म से बध्द संसारी जीव हैं।

प्रश्नः -सिध्द भगवान का आत्मा कैसा है ?

उत्तरः- सिध्द भगवान अमूर्तिक हैं, क्योंकि पुद्गल कर्मबन्ध से सर्वथा रहित (छूट गए) हैं।

चौथा; कर्त्ता अधिकार

पुग्गलकम्मा-दीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो ।
चेदणकम्मा-णादा, सुध्द-णया सुध्द-भावाणं ॥८॥

अन्वयार्थ-(आदा) आत्मा (ववहारदो) व्यवहार नय से (पुग्गलकम्मादीणं) ज्ञाना-वरणादि पुद्गल कर्मों का (कत्ता) कर्त्ता है (णिच्छयदो) अशुध्द निश्चयनय से (चेदण कम्माणादा) रागादिक भावकर्मों का (कत्ता) है (दु) और (सुध्दणया) शुध्द निश्चय नय से (सुध्दभावाणं) शुध्दभावों का (कत्ता) कर्त्ता है।

अर्थ - आत्मा; व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता है। अशुध्द निश्चयनय से रागादि भावकर्मों का कर्ता है तथा शुध्द निश्चय नय से शुध्द भावों का कर्त्ता है।

प्रश्नः -पुद्गल कर्म कौन-कौन से हैं ?

उत्तरः- ज्ञानावरण, दर्शनावरणादि आठ द्रव्यकर्म और छःपर्याप्ति और तीन शरीर; ये नौ, नोकर्म पुद्गल कर्म हैं।

प्रश्नः -भाव कर्म कौन-से हैं ?

उत्तरः- राग, द्वेष, मोह आदि भाव कर्म हैं।

प्रश्नः -जीव के शुद्धभाव कौन-से हैं ?

उत्तरः- शुद्धज्ञान और शुद्धदर्शन जीव के शुद्धभाव हैं।

प्रश्नः -क्या जीव कर्त्ता है ?

उत्तरः- हाँ; व्यवहार नय से जीव कर्मों का कर्ता है।

प्रश्नः -निश्चय नय के कितने भेद हैं ?

उत्तरः- निश्चय नय के दो भेद हैं — १. अशुद्ध निश्चय नय; २. शुद्ध निश्चय नय।

पाँचवाँ; भोक्ता अधिकार

ववहारा सुह दुक्खं, पुग्गल-कम्मप्-फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्छय - णयदो, चेदण-भावं खु आदस्य ॥९॥

अन्वयार्थ - (आदा) आत्मा (ववहारा) व्यवहार नय से (सुहदुक्खं) सुख-दुःखस्वरूप (पुग्गलकम्मप्-फलं) पौद्गलिक कर्मों के फल को (पभुंजेदि) भोगता है (णिच्छय-णयदो) निश्चय नय से (आदस्स) अपने (चेदणभावं) ज्ञान-दर्शनरूप शुद्ध भावों को (खु) नियम से (पभुंजेदि) भोगता है।

अर्थ - आत्मा; व्यवहार नय से सुख-दुःखरूप पुद्गल कर्मों के फल को भोगता है और निश्चय नय से वह शुद्ध-ज्ञान, शुद्ध-दर्शन का ही भोक्ता है।

प्रश्नः- सुख किसे कहते हैं ?

उत्तरः- आह्लादरूप आत्मा की परिणति को सुख कहते हैं।

प्रश्नः - दुःख किसे कहते हैं ?

उत्तरः- खेदरूप आत्मा की परिणति को दुःख कहते हैं।

प्रश्नः - आत्मा; सुख-दुःख का भोगने वाला किस नय अपेक्षा से है ?

उत्तरः- व्यवहार नय से।

प्रश्नः- शुद्ध-ज्ञान और शुद्ध-दर्शन कौन से हैं ?

उत्तरः- राग-द्वेष रहित ज्ञान और राग-द्वेष रहित दर्शन; शुद्ध-ज्ञान-दर्शन हैं।

प्रश्नः- शुद्ध-ज्ञान-दर्शन किस जीव के पाया जाता है ?

उत्तरः- अरिहन्त, केवली व सिद्धों में शुद्ध-ज्ञान-दर्शन पाया जाता है।

प्रश्नः -आत्मा; शुद्ध-ज्ञान-दर्शन का भोगने वाला किस नय अपेक्षा से है ?

उत्तरः- निश्चय नय की अपेक्षा से ।

छटवाँ; स्वेदह प्रमाण अधिकार

अणुगुरु-देहपमाणो, उवसंहारप्-पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा, णिच्छय-णयदो असंख देसो वा ।।१०।।

अन्वयार्थ - (चेदा) आत्मा (ववहारा) व्यवहार नय से (असमुहदो समुद्घात को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में (उवसंहारप्पसप्पदो) संकोच और विस्तार के कारण (अणुगुरु देहपमाणो) छोटे बड़े शरीर के बराबर प्रमाण को धारण करने वाला है (वा)और (णिच्छय णयदो) निश्चय नय से (असंख देसो) असंख्यात प्रदेशी है।

अर्थ - आत्मा; व्यवहार नय से समुद्घात को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में संकोच-विस्तार के कारण छोटे-बड़े शरीर के बराबर प्रमाण को धारण करने वाला है और निश्चय नय से असंख्यात प्रदेशी है।

प्रश्नः- जीव; छोटे-बड़े शरीर के बराबर प्रमाण को धारण करने वाला कैसे है ?

उत्तरः- जीव में संकोच-विस्तार गुण स्वभाव से पाया जाता है, इसलिए वह अपने द्वारा कर्मोदय से प्राप्त शरीर के आकार प्रमाण को धारण करता है, यह व्यवहार नय की अपेक्षा से है।

प्रश्नः -उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तरः- जिस प्रकार एक दीपक को यदि छोटे कमरे में रखा जाए तो वह

उसे प्रकाशित करेगा और यदि वही दीपक किसी बड़े कमरे में रख दिया जाए तो वह उसे प्रकाशित करेगा। ठीक उसी प्रकार एक जीव जब चींटी का जन्म लेता है तो वह उसके शरीर में समा जाता है और जब वही जीव; हाथी का जन्म लेता है तो उसके शरीर में समा जाता है। स्पष्ट है कि जीव; छोटे शरीर में पहुँचने पर उसके बराबर और बड़े शरीर में पहुँचने पर उस बड़े शरीर के बराबर हो जाता है। इसी दृष्टि से जीव को व्यवहार नय से अणुगुरु-देह प्रमाण वाला बतलाया है, परन्तु समुद्घात में ऐसा नहीं होता है।

प्रश्नः - समुद्घात के समय ऐसा क्यों नहीं होता ?

उत्तरः- कारण कि समुद्घात के समय जीव के प्रदेश; मूल शरीर को न छोड़ते हुए बाहर फैल जाते हैं।

प्रश्नः - जीव; असंख्यात प्रदेशी किसी नय की अपेक्षा से है ?

उत्तरः- जीव; निश्चय नय की अपेक्षा से असंख्यातप्रदेशी है।

प्रश्नः- समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तरः- मूल शरीर से सम्बन्ध छोड़े बिना; आत्मा के प्रदेशों का तैजस व कार्मण शरीर के साथ बाहर फैल जाना, समुद्घात कहलाता है।

प्रश्नः- समुद्घात कितने प्रकार का होता है ?

उत्तरः- समुद्घात सात प्रकार का होता है — १. वेदना समुद्घात; २. कषाय समुद्घात; ३. विक्रिया समुद्घात; ४. मारणान्तिक समुद्घात; ५. तैजस समुद्घात; ६. आहारक समुद्घात; ७. केवली समुद्घात।

१. वेदना समुद्घातः - शरीर में तीव्र वेदना के अनुभव होने से अपने मूल शरीर को छोड़े बिना; आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर फैल जाना-निकलना, वेदना समुद्घात है। जिसके होने से पीड़ा एकदम शान्त हो जाती है।

जैसे - कच्चे फोड़े में पीड़ा अधिक होती है। उसके पकाने के लिए जो पुलटिस (औषधि) बाँधी जाती है, जिससे फोड़े में जलन (पीड़ा) बढ़ जाती है, लेकिन फोड़ा पूर्ण पक जाने पर शीघ्र फूट जाता है एवं पीड़ा कम हो जाती है। चोट दो तरह की लगती है, पहली; जिसमें खून बाहर निकल जाता है, उसमें पीड़ा-दर्द कम होता है, लेकिन दूसरी; जिस चोट में खून बाहर नहीं निकलता उसमें पीड़ा अधिक होती है, लेकिन उसी जगह थोड़ी मालिस करने पर गर्मी-जलन से पीड़ा बढ़ तो जाती है, लेकिन थोड़ी देर में आराम भी मिलता है। एक्यूप्रेशर-एक्यूपञ्चर आदि विधियाँ वेदना समुद्घात की प्रक्रिया को अनुभव कराती हैं।

इस विधि में जिस व्यक्ति को पीड़ा-दर्द हो रहा हो, वह चिन्तन करें कि अभी दर्द कम हो रहा है, थोड़ा और हो, थोड़ा और हो, इस प्रकार के चिन्तन से भी पीड़ा एकदम शान्त हो जाती है। सुना जाता है कि वेदना समुद्घात में रोगी के आत्म प्रदेश शरीर से बाहर निकलकर योग्य औषधि को छूकर आते हैं, जिससे पीड़ा शान्त हो जाती है।

२. **कषाय समुद्घातः** - तीव्र क्रोधादि कषाय के उदय से मूल शरीर को छोड़े बिना; आत्मा के प्रदेश दूसरे को मारने, पीड़ा पहुँचाने के लिए शरीर से बाहर निकलते हैं, उसे कषाय समुद्घात कहते हैं।

जैसे - कोई तीव्र क्रोध करता है तो उसे कहते हैं कि यह तो **"आपे से बाहर"** हो गया है अथवा **जैसे**-क्रोध करने वाले से कह देते हैं कि जितना गुस्सा करना है कर लो, यदि वह किसी को पीटता है तो पिटने वाला कहे कि मार लो; तुमको कितना मारना, जी भरकर पीट लो; ऐसा कहने से उसकी कषाय शान्त हो जाती है।

३. **वैक्रियिक समुद्घातः** - मूल शरीर को छोड़े बिना; किसी प्रकार की विक्रिया (छोटा-बड़ा शरीर) उत्पन्न करने के लिए आत्म प्रदेशों का

बाहर फैल जाते हैं, उसे वैक्रियिक समुद्घात कहते हैं।

जैसे - विष्णुकुमार मुनि ने विक्रिया-ऋद्धि से अपने शरीर का छोटा-बड़ा शरीर बनाया था।

४. **मारणान्तिक समुद्घातः** - मरण के पहले मूल शरीर को न छोड़ते हुए; आत्मा के प्रदेश आगामी जन्म लेने के स्थान को छूने के लिए जाते हैं, उसे मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं।

५. **तैजस समुद्घातः** - मूल शरीर को छोड़े बिना; महामुनि संयमी साधु के जो संक्लेश के द्वारा अहित परिणाम एवं विशुद्धि के द्वारा हित परिणाम से आत्मा के प्रदेश किसी निश्चित आकार एवं निश्चित स्थान से बाहर निकलते हैं, उसे तैजस समुद्घात कहते हैं। इसके दो भेद हैं — १. अशुभ; २. शुभ ।

(१. **अशुभ तैजसः**- महासंयम निधान साधु के बायें कन्धे से सिन्दूरी रङ्ग का बारह योजना लम्बा एवं सुच्यांगुल के असंख्यात वें भाग प्रमाण, मूल विस्तार में नौ योजन के अग्र विस्तार वाले; बिलाव के आकार का पुतला निकलता है जो अहित-अनिष्ट करता है।

जैसे- द्वीपायन मुनिराज के बायें कन्धे से द्वारिका को जलाने के लिये पुतला निकला था। द्वारिका जलाने के बाद; उस पुतले ने वापिस मुनि के शरीर में प्रवेश करते समय द्वीपायन मुनिराज को भी जला दिया था।

विशेष-अशुभ तैजस पुतला भी जिन मुनिराजों के निकलता है, वे भावलिङ्गी-छटवें गुणस्थानवर्ती ही होते हैं। जब तक वह पुतला नगरादि को जलाकर पुनः मुनि श्री के शरीर में आकर उनके शरीर को नहीं जलाता तब तक वे मुनि सम्यग्दृष्टि-भाव लिङ्गी ही रहते हैं। भस्म होते समय मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं।

(२. **शुभ तैजसः**-महासंयमी शुभ संकल्प वाले मुनिराज के अशुभ तैजस के प्रमाण वाला, सौम्याकृति का धारक, पुरुषाकार दायें कन्धे से जो

पुतला निकलता है, वह दुर्भिक्ष, महामारी आदि व्याधि को दूर करके पुनः मुनि श्री के शरीर में बिना अहित किए समा जाता है, उसे शुभ तैजस कहते हैं।

६. **आहारक समुद्घातः** - महासंयमी मुनिराज को जब छटवें गुणस्थान में रहते हुए किसी तत्त्व-पदार्थ आदि के विषय में शङ्का उत्पन्न हो, उसका समाधान करने के लिए अथवा संयम की रक्षा-जैसे तीर्थयात्रा-गुरुदर्शन आदि के लिए गमन करने से चलने में सूक्ष्म हिंसा होगी, ऐसा विकल्प होने पर जो आहारक ऋद्धिधारी मुनिराज के शुभ-विशुद्ध-निर्मल स्फटिक के रङ्ग का; एक हाथ प्रमाण वाला पुरुषाकार पुतला मस्तक से निकलता है। जो केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में शङ्का समाधान करके, तीर्थयात्रा या गुरुदर्शन करके, शुभ संकल्प की पूर्ति करके पुनः मूल शरीर में बिना अहित किए समा जाता है, उसे आहारक समुद्घात कहते हैं।

विशेष - आहारक शरीर का बन्ध आठवें गुणस्थान के छटवें भाग तक होता है तथा उदय छटवें गुणस्थान में होता है।

७. **केवली समुद्घातः** - जब अरिहन्त - केवली के चार अघाति कर्मों में से एक आयु कर्म की स्थिति छह माह हो एवं नाम, गोत्र एवं वेदनीय कर्म की स्थिति, आयु कर्म से अधिक हो तब इन तीन कर्मों की स्थिति को आयु कर्म के बराबर बनाने के लिए; दण्ड, कपाट, प्रतर एवं लोक पूरण अवस्था में उनके आत्म प्रदेश क्रमशः होते हुए, तीनों लोक के बराबर फैल जाते हैं, इसे केवली समुद्घात कहते हैं।

जैसे - चार तह किए गीले कपड़े को फैला देने से कपड़ा एक साथ पूर्णरूप से सूख जाता है। वैसे ही केवली समुद्घात में तीन कर्मों की स्थिति; आयु कर्म के बराबर कर लेने से मोक्ष जाते समय सभी कर्म एक साथ ही खिर जाते हैं।

अकलङ्क आचार्य के मतानुसार वेदनीय कर्म को आयु कर्म के

बराबर करने के लिए केवली समुद्घात होता है।

सातवाँ; संसारी अधिकार

पुढवि जल तेय वाऊ, वणप्फदी विविह थावरे-इंदी।
विग तिग चदु पंचक्खा, तस जीवा होंति संखादी ॥११॥

अन्वयार्थ- (पुढवि जल तेय वाऊ वणप्फदी) पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक (विविह थावरे इंदी) अनेक प्रकार के स्थावर एकेन्द्रिय जीव हैं (संखादी) शंख आदि (विग तिग चदु पंचक्खा) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव (तस जीवा) त्रस जीव (होंति) होते हैं।

अर्थ - पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक; ये स्थावर जीव हैं तथा शंखादि दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रिय जीव; त्रस कहलाते हैं।

प्रश्नः- संसारी जीवों के कितने भेद हैं?

उत्तरः- संसारी जीवों के दो भेद हैं — १. स्थावर; २. त्रस।

प्रश्नः- स्थावर जीव कौन से हैं।

उत्तरः- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीव; स्थावर हैं।

प्रश्नः- त्रस जीव कौन से हैं?

उत्तरः- दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रिय तक के जीव; त्रस हैं।

प्रश्नः- त्रस जीव के कितने भेद हैं?

उत्तरः- त्रस जीव के दो भेद हैं — १. विकलेन्द्रिय; २. सकलेन्द्रिय।

प्रश्नः- विकलेन्द्रिय जीव के कितने भेद हैं?

उत्तरः- विकलेन्द्रिय जीव के तीन भेद हैं— १. दो इन्द्रिय; २. तीन इन्द्रिय; ३. चार इन्द्रिय।

प्रश्नः- सकलेन्द्रिय जीव के कितने भेद हैं?

उत्तरः- सकलेन्द्रिय जीव के दो भेद हैं —१. सैनी; २. असैनी।

प्रश्नः- सैनी-असैनी किसे कहते हैं?

उत्तरः- मन सहित सैनी एवं मन रहित जीव को असैनी कहते हैं ?

प्रश्नः- शंख, चींटी, मक्खी, मनुष्य आदि कितने इन्द्रिय जीव हैं ?

उत्तरः- शंख-दो इन्द्रिय जीव। चींटी-तीन इन्द्रिय जीव। मक्खी-चार इन्द्रिय जीव। मनुष्य, नारकी, देव, हाथी, घोड़ा आदि पञ्चेन्द्रिय जीव हैं।

प्रश्नः -जीव; स्थावर या त्रस जीवों में किस कर्म के उदय से पैदा होता है ?

उत्तरः- स्थावर नामकर्म के उदय से जीव; स्थावर जीवों में उत्पन्न होता है तथा त्रस नामकर्म के उदय से त्रस जीवों में उत्पन्न होता है।

संसारी जीव के चौदह जीवसमास

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादर सुहमे-इंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥

अन्वयार्थ - (पंचिंदिय) पञ्चेन्द्रिय जीव (समणा) संज्ञी (अमणा) असंज्ञी (णेया) जानना चाहिए (परे) शेष (सव्वे) सब (णिम्मणा) असंज्ञी (णेया) जानना चाहिए (एइंदी) एकेन्द्रिय जीव (बादर सुहमे) बादर और सूक्ष्म होते हैं (सव्वे) ये सब जीव (पज्जत्त) पर्याप्तक (इदरा य) और अपर्याप्तक होते हैं।

अर्थ - पञ्चेन्द्रिय जीव; संज्ञी और असंज्ञी के भेद से दो प्रकार के होते हैं। शेष एकेन्द्रिय एवं विकलत्रय असंज्ञी होते हैं, एकेन्द्रिय जीवों में कुछ बादर और कुछ सूक्ष्म होते हैं और सभी जीव; पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

प्रश्नः- मन सहित एवं मन रहित जीव कौन से हैं ?

उत्तरः- पञ्चेन्द्रिय जीव; मन रहित भी होते हैं व मन सहित भी होते हैं, किन्तु एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीव; मन रहित ही होते हैं।

प्रश्नः -बादर जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तरः- जो बादर नामकर्म के उदय से स्वयं भी दूसरों से रुकते हैं और

दूसरों को भी रोकते हैं अथवा जो आपस में टकरा सकें, उनको बादर जीव कहते हैं।

प्रश्नः - सूक्ष्म जीव किन्हें कहते हैं?

उत्तरः- जो सूक्ष्म नामकर्म के उदय से दूसरों को नहीं रोकते हैं तथा दूसरों से रुकते भी नहीं हैं अथवा जो किसी से टकरा न सकें, उन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं।

प्रश्नः - अपर्याप्तक जीव किन्हें कहते हैं?

उत्तरः- जिन जीवों की आहारादि पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं होती हैं, उन्हें अपर्याप्तक जीव कहते हैं।

प्रश्नः - पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तरः- गृहीत आहारवर्गणा को खल-रस भाग आदिरूप परिणमाने की जीव की शक्ति के पूर्ण हो जाने को पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्नः - पर्याप्तियों के भेद बताइये?

उत्तरः- पर्याप्ति के ६ भेद हैं —— १. आहार; २. शरीर; ३. इन्द्रिय; ४. श्वासोच्छ्वास; ५. भाषा और ६. मन।

१. आहार पर्याप्तिः- आहार वर्गणा के परमाणुओं को खल और रस भागरूप परिणमाने के कारणभूत; जीव की शक्ति की पूर्णता को आहार पर्याप्ति कहते हैं।

२. शरीर पर्याप्तिः - खल भाग को हड्डी आदिरूप एवं रस भाग को रुधिर आदिरूप परिणमाने के कारणभूत; जीव की शक्ति की पूर्णता को शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

३. इन्द्रिय पर्याप्तिः - आहार वर्गणा के परमाणुओं को इन्द्रियरूप परिणमाने के कारणभूत; जीव की शक्ति की पूर्णता को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिः- आहार वर्गणा के परमाणुओं को श्वासोच्छ्वासरूप परिणमाने के कारणभूत; जीव की शक्ति की पूर्णता को

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

५. भाषा पर्याप्तिः - भाषा वर्गणा के परमाणुओं को वचनरूप परिणमाने में कारणभूत; जीव की शक्ति की पूर्णता को भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

६. मनःपर्याप्तिः - मनोवर्गणा के परमाणुओं को हृदय स्थान में आठ पाँखुड़ी कमलाकार मनरूप परिणमाने तथा उससे विचार करनेरूप जीव की शक्ति की पूर्णता को मनःपर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्नः - पर्याप्तियों के स्वामी बताइये, किस जीव के कितनी पर्याप्तियाँ हैं ?

उत्तरः - एकेन्द्रिय जीव के ४ पर्याप्तियाँ - आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास होती हैं। विकलत्रय जीव व असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के मनःपर्याप्ति को छोड़कर पाँच होती है तथा सैनी पञ्चेन्द्रिय जीव के छहों पर्याप्तियाँ होती हैं।

प्रश्नः - जीवसमास का लक्षण बताइये ?

उत्तरः - जिनके द्वारा अनेक प्रकार के जीव तथा उनकी अनेक प्रकार की जाति जानी जायें, उन धर्मों को अनेक पदार्थों का संग्रह करने वाले होने से जीवसमास कहते हैं अथवा जीव के बारे में संक्षेप जानकारी को जीवसमास कहते हैं।

प्रश्नः - चौदह जीवसमास बताइये ?

उत्तरः -

एकेन्द्रिय सूक्ष्म, बादर	-	२		
दो इन्द्रिय बादर	-	१		
तीन इन्द्रिय बादर	-	१		
चार इन्द्रिय बादर	-	१		
पञ्चेन्द्रिय असैनी बादर	-	१		
पञ्चेन्द्रिय सैनी बादर	-	१	=	७

ये सात प्रकार के जीव; पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी

होते हैं, अतः ७×२ = १४ जीवसमास।

प्रश्नः - सिद्ध भगवान के कितने जीवसमास हैं?

उत्तरः - सिद्ध भगवान जीवसमास से रहित हैं।

संसारी जीव के चौदह मार्गणा एवं गुणस्थान

मग्गणगुण-ठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्ध-णया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्ध-णया ॥१३॥

अन्वयार्थ - (तह) तथा (संसारी) सभी संसारी जीव के (असुद्धणया) व्यवहार नय से (चउदसहि) चौदह (मग्गणगुणठाणेहि) मार्गणा और गुणस्थान (हवंति) होते हैं (य) और (सुद्धणया) शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि से (सव्वे) सभी जीव (हु) नियम से (सुद्धा) शुद्ध (विण्णेया) जानने चाहिए।

अर्थ - संसारी जीव; व्यवहार नय से चौदह मार्गणा और चौदह गुणस्थानों की अपेक्षा चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं, किन्तु शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि से सभी संसारी जीव; शुद्ध हैं, उनमें कोई भेद नहीं हैं।

प्रश्नः - जीव; चौदह प्रकार के किस अपेक्षा से हैं?

उत्तरः - व्यवहार नय से जीव; चौदह मार्गणा, चौदह गुणस्थान वाले होने से चौदह प्रकार के होते हैं।

प्रश्नः - जीव; शुद्ध किस अपेक्षा से है?

उत्तरः - शुद्ध निश्चय नय की दृष्टि से।

प्रश्नः - जीव के चौदह भेद मार्गणा अपेक्षा बताइये?

उत्तरः - मार्गणाएँ चौदह होती हैं, अतः उस सम्बन्ध से जीव के भी चौदह भेद हो गये। १. गति; २. इन्द्रिय; ३. काय; ४. योग; ५. वेद; ६. कषाय; ७. ज्ञान; ८. संयम; ९. दर्शन; १०. लेश्या; ११. भव्यत्व; १२. सम्यक्त्व; १३. संज्ञित्व और १४. आहारक।

प्रश्नः - मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तरः- जिन धर्म (लक्षण) विशेषों से जीवों का अन्वेषण-खोज की जाए, उन्हें मार्गणा कहते हैं।

प्रश्नः- गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तरः- मोह और योग के निमित्त से होने वाले आत्मा के गुणों (भावों की तार-तम्यरूप अवस्था विशेष) को गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्नः- गुणस्थान कितने होते हैं ?

उत्तरः- चौदह गुणस्थान होते हैं — १. मिथ्यात्व; २. सासादन; ३. मिश्र; ४. अविरत; ५. देशविरत; ६. प्रमत्तविरत; ७. अप्रमत्तविरत; ८. अपूर्णकरण; ९. अनिवृत्ति-करण; १०. सूक्ष्मसाम्पराय; ११. उपशान्तमोह; १२. क्षीणमोह; १३. सयोगकेवली; १४. अयोगकेवली।

प्रश्नः - शुद्ध नय से संसारी जीव के कितने गुणस्थान और मार्गणा होती हैं तथा व्यवहार नय से कितने ?

उत्तरः- शुद्ध निश्चय नय से संसारी जीव के गुणस्थान भी नहीं और मार्गणा भी नहीं होती हैं एवं व्यवहार नय से चौदह गुणस्थान और चौदह मार्गणायें होती हैं।

प्रश्नः - सिद्ध भगवान के गुणस्थान और मार्गणाएँ बताइये ?

उत्तरः- सिद्ध भगवान; गुणस्थान और मार्गणाओं से रहित गुणस्थानातीत व मार्गणातीत हैं।

आठवाँ; सिद्ध एवं नववाँ; ऊर्ध्वगमन अधिकार

णिक्-कम्मा अट्ठ-गुणा, किंचूणा चरम-देहदो सिद्धा।
लोयग्ग-ठिदा णिच्चा, उप्पाद-वएहिं संजुत्ता ॥१४॥

अन्वयार्थ - (णिक्कम्मा) ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित (अट्ठगुणा) सम्यक्त्व आदि गुणों से सहित (चरम देहदो) अन्तिम शरीर से (किंचूणा) प्रमाण में कुछ कम (णिच्चा) नित्य (उप्पाद-वएहिं) उत्पाद और व्यय से (संजुत्ता) संयुक्त (लोयग्ग-ठिदा) लोक के अग्रभाग में स्थित (सिद्धा) सिद्ध होते हैं।

अर्थ - आठ कर्मों से रहित, आठ गुणों से सहित, प्रमाण में अन्तिम शरीर से कुछ कम; उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य युक्त, लोक के अग्रभाग में अवस्थित होने वाले जीव; सिद्ध कहलाते हैं।

प्रश्नः - आठ कर्म कौन से हैं ?

उत्तरः- १. ज्ञानावरण; २. दर्शनावरण; ३. वेदनीय; ४. मोहनीय; ५. आयु; ६. नाम; ७. गोत्र और ८. अन्तराय; ये आठ कर्म के नाम हैं।

प्रश्नः - आठ गुण कौन से हैं ?

उत्तरः- १. अनन्तज्ञान; २. अनन्तदर्शन; ३. अनन्तसुख; ४. अनन्तवीर्य; ५. अव्याबाध; ६. अवगाहनत्व; ७. सूक्ष्मत्व और ८. अगुरुलघुत्व; ये सिद्धों के आठ गुण हैं।

प्रश्नः - किस कर्म के नाश से कौन-सा गुण प्रकट होता है ?

उत्तरः- ज्ञानावरण कर्म के नाश से अनन्तज्ञान।

दर्शनावरण कर्म के नाश से अनन्तदर्शन।

मोहनीय कर्म के नाश से अनन्तसुख।

अन्तराय कर्म के नाश से अनन्तवीर्य।

वेदनीय कर्म के नाश से अव्याबाध।

आयु कर्म के नाश से अवगाहनत्व।

नाम कर्म के नाश से सूक्ष्मत्व।

गोत्र कर्म के नाश से अगुरुलघुत्व गुण प्रकट होता है।

प्रश्नः - अन्तिम शरीर से कितना कम सिद्ध जीवों के आकार का प्रमाण होता है ?

उत्तरः- पूरे शरीर में मक्खी के पंख के बराबर पतली चमड़ी, नख, केश एवं नाक, कान-आँत आदि के खाली स्थान के बराबर कम; अन्तिम शरीर प्रमाण; सिद्ध जीवों के आकार का प्रमाण है।

प्रश्नः - उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तरः- द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं।

प्रश्नः - व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तरः- द्रव्य में पूर्व पर्याय के नाश को व्यय कहते हैं।

प्रश्नः - ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तरः- द्रव्य की नित्यता को ध्रौव्य कहते हैं।

प्रश्नः - उदाहरण से समझाइये ?

उत्तरः- सिद्ध-जीवों में- संसारी पर्याय का नाश—व्यय है। सिद्ध पर्याय की उत्पत्ति—उत्पाद है। जीव द्रव्य, ध्रौव्य है। **पुद्गल में-** स्वर्ण का हार है, हमें उसकी चूड़ी चाहिए। चूड़ी पर्याय की उत्पत्ति—उत्पाद है स्वर्ण हार का नाश—व्यय है एवं स्वर्ण, ध्रौव्य है, जो सोना पहले हार में था, वही सोना अब चूड़ी में है, अतः स्वर्ण ध्रौव्य है। आना-जाना-लगा हुआ-है। **आना** उत्पाद, **जाना** व्यय, **लगा हुआ** ध्रौव्य एवं है सत्।

इति जीवाधिकार समाप्त

प्रज्ञासागर मुनि

दूसरा; अजीव अधिकारः

अजीव द्रव्य के भेद एवं नाम तथा मूर्तामूर्त की सिद्धि

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गलमुत्तो, रूवादि गुणो अमुत्ति सेसा हु ।।१५।।

अन्वयार्थ - (पुण) और (पुग्गल) पुद्गल (धम्मो) धर्म (अधम्म) अधर्म (आयासं) आकाश (कालो) काल (अज्जीवो) अजीव (णेओ) जानना चाहिए (रूवादिगुणो) रूप आदि गुण युक्त (पुग्गल) पुद्गल (मुत्तो) मूर्तिक है (सेसा हु) और शेष (अमुत्ति) अमूर्तिक हैं।

अर्थ - **अजीव द्रव्य** - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल; इन पाँच भेदरूप जानना चाहिए। उनमें रूपादि गुणयुक्त पुद्गल; मूर्तिक है तथा धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य; अमूर्तिक हैं।

प्रश्नः - **मूर्तिक किसे कहते हैं?**

उत्तरः - जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श; ये गुण पाये जावें, उसे मूर्तिक कहते हैं।

प्रश्नः - **अमूर्तिक किसे कहते हैं?**

उत्तरः - जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श; ये गुण नहीं पाये जावें, उसे अमूर्तिक कहते हैं।

प्रश्नः - **जिसे हम देख सकें, छू सकें, सूँघ सकें और चख सकें, वह मूर्तिक है या अमूर्तिक?**

उत्तरः - वह मूर्तिक कहा जायेगा।

प्रश्नः - **परमाणु को; हम देख नहीं सकते, छू नहीं सकते, सूँघ नहीं सकते, चख नहीं सकते, उसे मूर्तिक कैसे कहा जा सकता है?**

उत्तरः - अनेक परमाणु मिलकर जो स्कन्ध बनते हैं, उन्हें हम देख सकते हैं, छू सकते, सूँघ सकते, चख सकते, यदि परमाणुओं में रूपादि

नहीं होते तो स्कन्ध में भी वे कहाँ से आते ?

प्रश्नः- परमाणु में रूपादि बीस गुणों में से कितने गुण पाए जाते हैं ?

उत्तरः- परमाणु में; कोई एक रस, कोई एक गन्ध, कोई एक वर्ण और रूखा-चिकना में से कोई एक, कड़ा-नरम में से कोई एक; ऐसे दो स्पर्श पाये जाते हैं। इस प्रकार एक परमाणु में पाँच गुण पाए जाते हैं।

प्रश्नः - अजीव द्रव्य कौन-कौन से हैं ?

उत्तरः- पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल; ये पाँच अजीव द्रव्य हैं।

प्रश्नः - मूर्तिक द्रव्य कितने हैं, अमूर्तिक कितने ?

उत्तरः- जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल; ये पाँच अमूर्तिक हैं और एक पुद्गल मूर्तिक है।

पुद्गल द्रव्य की दश पर्यायें

सद्दो बंधो सुहमो, थूलो संठाण भेद तम छाया ।
उज्जो-दादव सहिया, पुग्गल दव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

अन्वयार्थ - (सद्दो) शब्द (बंधो) बन्ध (सुहमो) सूक्ष्म (थूलो) स्थूल (संठाण भेद-तम छाया) आकार, टुकड़े, अन्धकार और छाया (उज्जोदादवसहिया) उद्योत और आतप सहित (पुग्गलदव्वस्स) पुद्गलद्रव्य की (पज्जाया) पर्यायें (हैं)।

अर्थ - १. शब्द; २. बन्ध; ३. सूक्ष्म; ४. स्थूल; ५. आकार; ६. टुकड़े; ७.अन्धकार; ८.छाया; ९.उद्योत और १०.आतप; ये दस पुद्गल की पर्यायें हैं।

प्रश्नः -शब्द के भेद बताइये ?

उत्तरः- शब्द के दो भेद हैं— १.भाषारूप और २.अभाषारूप।

प्रश्नः - भाषात्मक शब्द के भेद कौन से हैं ?

उत्तरः- भाषात्मक शब्द के दो भेद हैं — १. साक्षर भाषा; २. अनक्षर भाषा।

प्रश्नः - साक्षर शब्द किन्हें कहते हैं?

उत्तरः- जिनसे शब्द रचे जाते हैं और जिनसे आर्य और म्लेच्छों का व्यवहार चलता है, ऐसे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि शब्द; साक्षर शब्द हैं।

प्रश्नः - अनक्षर शब्द किन्हें कहते हैं?

उत्तरः- जिनसे उनके सातिशय ज्ञान के स्वरूप का पता लगता है, ऐसे दो इन्द्रिय आदि जीवों के शब्द; अनक्षरात्मक शब्द हैं। (साक्षर व अनक्षर दोनों शब्द प्रायोगिक हैं)।

प्रश्नः - अभाषात्मक शब्द के भेद बताइये?

उत्तरः- अभाषात्मक शब्द दो प्रकार के हैं — १. प्रायोगिक; २. वैस्रसिक।

प्रश्नः - प्रायोगिक शब्द कौन-से हैं?

उत्तरः- तत, वितत, घन और सौषिर के भेद से प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के हैं।

प्रश्नः - तत प्रायोगिक शब्द कौन-से है?

उत्तरः- चमड़े से मढ़े हुए, पुष्कर, भेरी और दुर्दुर से जो शब्द उत्पन्न होता है, वह तत शब्द है।

प्रश्नः - वितत प्रायोगिक शब्द कौन-से हैं?

उत्तरः- ताँत वाले वीणा और सुघोष आदि से जो शब्द उत्पन्न होता है, वह वितत शब्द है।

प्रश्नः - घन प्रायोगिक शब्द कौन-से है?

उत्तरः- ताल, घण्टा और लालन आदि के ताड़न से जो शब्द उत्पन्न होता है, वह घन शब्द है।

प्रश्नः - सौषिर प्रायोगिक शब्द कौन-से हैं?

उत्तरः- बाँसुरी और शंख आदि के फूँकने से जो शब्द उत्पन्न होता है,

वह सौषिर है।

प्रश्नः - वैस्रसिक शब्द कौन-से हैं?

उत्तरः- मेघ आदि के निमित्त से जो शब्द उत्पन्न होते हैं, वे वैस्रसिक शब्द हैं।

प्रश्नः - बन्ध पर्याय के भेद बताइये?

उत्तरः- बन्ध पुद्‌गल पर्याय के २ भेद हैं— १. वैस्रसिक; २. प्रायोगिक।

प्रश्नः - वैस्रसिक बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तरः- जिसमें पुरुष का प्रयोग अपेक्षित नहीं है, वह वैस्रसिक बन्ध है, **जैसे**- स्निग्ध और रूक्ष गुण के निमित्त से होने वाला बिजली, उल्का, मेघ, अग्नि और इन्द्रधनुष आदि का विषयभूत बन्ध; वैस्रसिक बन्ध है।

प्रश्नः - प्रायोगिक बन्ध किसे कहते हैं? इसके भेद बताइये?

उत्तरः- जो बन्ध; पुरुष के प्रयोग के निमित्त से होता है, वह प्रायोगिक बन्ध है। इसके दो भेद हैं— १. अजीव-अजीव सम्बन्धी; २. जीव-अजीव सम्बन्धी, **जैसे**- लाख और लकड़ी आदि का अजीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है तथा कर्म और नोकर्म का जीव के साथ जो बन्ध होता है, वह जीवाजीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है।

प्रश्नः - सूक्ष्मता के भेद बताइये?

उत्तरः- सूक्ष्मता दो प्रकार की होती है— १. अन्त्य; २. आपेक्षिक। परमाणुओं में अन्त्य सूक्ष्मता है (परमाणु से छोटा कोई पदार्थ नहीं है) और बेल, आँवला और बेर में आपेक्षिक सूक्ष्मत्व है। बेल से आँवला छोटा है तथा आँवला से बेर छोटा है।

प्रश्नः - स्थौल्य किसे कहते हैं, उसके भेद बताइये है?

उत्तरः- स्थूलता को स्थौल्य कहते हैं। यह भी दो प्रकार का है— १. अन्त्य; २. आपेक्षिक। महास्कन्ध अन्त्य स्थौल्य है (महास्कन्ध

से बड़ा कोई पदार्थ नहीं हैं)। बेर, आँवला और बेल आदि में आपेक्षिक स्थौल्य है। बेर से आँवला बड़ा है तथा आँवला से बेल बड़ा है।

प्रश्नः - संस्थान भेद किसे कहते हैं ?

उत्तरः- आकृति को संस्थान कहते हैं। त्रिकोण, चतुष्कोण आदि आकार संस्थान हैं।

प्रश्नः - भेद किसे कहते हैं ?

उत्तरः- वस्तु को अलग-अलग चूर्णादि करना भेद है। भेद के भी छः भेद हैं— १.उत्कर; २.चूर्ण; ३.खण्ड; ४.चूर्णिका; ५.प्रतर और ६ अणुचटन।

प्रश्नः - उत्कर भेद किसे कहते हैं ?

उत्तरः- करोंत आदि से जो लकड़ी को चीरा जाता है, वह उत्कर नाम का भेद है।

प्रश्नः - चूर्ण भेद किसे कहते हैं ?

उत्तरः- गेहूँ आदि का जो सत्तू और कनक (दलिया) आदि बनता है, वह चूर्ण भेद है।

प्रश्नः - खण्ड भेद बताइये ?

उत्तरः- घट आदि के जो कपाल और शर्करा आदि टुकड़े होते हैं, वह खण्ड भेद है।

प्रश्नः - चूर्णिका भेद बताइये ?

उत्तरः- उड़द और मूँग आदि का जो खण्ड किया जाता है, वह चूर्णिका भेद है।

प्रश्नः- प्रतर भेद बताइये ?

उत्तरः- मेघ के जो अलग-अलग पटल आदि होते हैं, वह प्रतर नाम का भेद है।

प्रश्नः - अणुचटन भेद बताइये ?

उत्तरः- तपाये हुए लोहे के गोले आदि को घन आदि से पीटने पर जो फुलङ्गे निकलते हैं, वह अणुचटन नाम का भेद है।

प्रश्नः - तम किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जिससे दृष्टि में प्रतिबन्ध होता है और जो प्रकाश का विरोधी है, वह तम कहलाता है।

प्रश्नः - छाया किसे कहते हैं ?

उत्तरः- प्रकाश को रोकने वाले पदार्थों के निमित्त से जो पैदा होती है, वह छाया कहलाती है।

प्रश्नः - आतप किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश होता है, उसे आतप कहते हैं।

प्रश्नः - उद्योत किसे कहते हैं ?

उत्तरः- चन्द्रमणि और जुगनू आदि के निमित्त से जो प्रकाश होता है, उसे उद्योत कहते हैं। (ऊपर कहे ये सब शब्दादिक; पुद्गल द्रव्य के विकार-पर्याय हैं)।

धर्म द्रव्य का स्वरूप

गइ-परिणयाण धम्मो, पुग्गल जीवाण गमण सहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

अन्वयार्थ - (जह) जैसे (गइ परिणयाण) चलती हुयीं (मच्छाणं) मछलियों को (गमणसहयारी) चलने में सहायक (तोयं) जल होता है (तह) उसी प्रकार (गइ परिणयाण) चलते हुए (पुग्गल जीवाण) जीव और पुद्गल को (गहण सहयारी) चलने में सहायक (धम्मो) धर्म द्रव्य होता है (सो) वह धर्म द्रव्य (अच्छंता) ठहरे हुए जीव और पुद्गल को (णेव) नहीं (णेई) चलाता है।

अर्थ - जैसे- जल; चलती हुयीं मछलियों को चलने में सहायक होता है। उसी प्रकार धर्म द्रव्य; चलते हुए जीव और पुद्गल को चलने में सहकारी होता है, ठहरे हुए को नहीं।

प्रश्नः - धर्म द्रव्य को समझाने के लिए मछली एवं जल का उदाहरण क्यों दिया ?

उत्तरः- मछली; जल के बिना नहीं रह सकती, मछली; हजार फुट ऊपर से नीचे गिरने वाले जल के सहारे ऊपर चढ़ सकती है एवं तीव्र जल के वेग (गति) के बीच रुक भी सकती है, जल का वेग उसे बहा नहीं सकता है, इसलिए गाथा में "अच्छंता णेव सो णेई" अर्थात् ठहरे हुए को धर्म द्रव्य चलाता नहीं है। अभिप्राय यह है कि यह जीव सिध्दालय की ओर जब ऊर्ध्वगमन करता है तो जल में मछली की भाँति ऊपर को चढ़ता है, उसमें धर्म द्रव्य सहायक होता है।

प्रश्नः - निमित्त कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तरः- दो प्रकार के हैं— १.प्रेरक निमित्त; २.उदासीन निमित्त ।

प्रश्नः - प्रेरक निमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो कार्य करने की प्रेरणा दे, उसे प्रेरक निमित्त कहते हैं, **जैसे**-पढ़ाने के लिए गुरु; प्रेरक निमित्त होते हैं।

प्रश्नः - उदासीन निमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो कार्य करने में सहयोग दे, उसे उदासीन निमित्त कहते हैं, **जैसे**-पढ़ने में पुस्तक; उदासीन निमित्त है।

प्रश्नः - धर्म द्रव्य; जीव और पुद्‌गल के लिए गमन में कौन-सा निमित्त है ?

उत्तरः- धर्म द्रव्य; जीव और पुद्‌गल के गमन में सहकारी उदासीन निमित्त है, क्योंकि यह जबरन किसी को चलाता नहीं है, हाँ; कोई चलता है तो उसको सहायक होता है।

प्रश्नः - धर्म द्रव्य कहाँ पाया जाता है ?

उत्तरः- सम्पूर्ण लोकाकाश में धर्म द्रव्य पाया जाता है। धर्म द्रव्य की सहायता बिना जीव-पुद्‌गल का चलना-फिरना, एक स्थान से

दूसरे स्थान पर जाना-आना आदि सारी क्रियाएँ नहीं बन सकती हैं। वैज्ञानिक इसे ईथर कहते हैं।

अधर्म द्रव्य का स्वरूप

ठाण जुदाण अधम्मो, पुग्गल जीवाण ठाण सहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

अन्वयार्थ- (जह) जैसे (छाया) छाया (ठाण जुदाण) ठहरते हुए (पहियाणं) राहगीरों को (ठाण सहयारी) ठहरने में सहायक होती है (तह) उसी प्रकार (पुद्गल जीवाण) पुद्गल और जीवों को ठहरने में सहायक (अधम्मो) अधर्म द्रव्य होता है (सो) वह अधर्म द्रव्य है (गच्छंता) चलते हुए पुद्गल और जीवों को (णेव) नहीं (धरई) ठहरता है।

अर्थ- **जैसे-** छाया; ठहरते हुए राहगीरों को ठहरने में सहायता पहुँचाती है। उसी प्रकार अधर्म द्रव्य; ठहरते हुए जीव-पुद्गल को ठहरने में सहायता पहुँचाता है, वह अधर्म द्रव्य; चलते हुए जीव और पुद्गल को ठहराता नहीं है।

प्रश्नः - अधर्म द्रव्य को समझाने के लिए वृक्ष की छाया एवं पथिक का उदाहरण क्यों दिया ?

उत्तरः- जैसे - वृक्ष की छाया हमेशा वृक्ष के नीचे आस-पास ही रहती है; उल्टी छाया नहीं होती कि नीचे वृक्ष हो एवं वृक्ष के ऊपर छाया हो, अतः जब पथिक; छाया का स्थान देखकर रुकना चाहे तो रुक सकता है, नहीं रुकना चाहे तो छाया के नीचे से निकलने पर भी छाया; पथिक को रोकती नहीं है, अतः गाथा में 'गच्छंता णेव सो धरई' कहा है। कहने का अभिप्राय है कि जिस प्रकार छाया; रुकते हुए पथिक को रुकने में सहायक है। उसी प्रकार अधर्म द्रव्य; रुकते हुये जीव-पुद्गल को रुकने में सहायक है।

प्रश्नः - अधर्म द्रव्य; जीव-पुद्गलों के ठहराने में कौन-सा निमित्त

है ?

उत्तरः - उदासीन निमित्त है, क्योंकि, **जैसे** - छाया किसी को जबरन नहीं ठहराती। उसी तरह अधर्म द्रव्य भी किसी को जबरन नहीं ठहराता।

प्रश्नः - धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य दोनों कहाँ रहते हैं ?

उत्तरः - समस्त लोकाकाश में रहते हैं।

प्रश्नः - दोनों में समान शक्ति है या न्यूनाधिक ?

उत्तरः - दोनों में समान शक्ति है।

प्रश्नः - यदि दोनों में समान शक्ति है तो संसार में न कोई चल सकता है और न कोई ठहर सकता है, क्योंकि जिस समय धर्म द्रव्य; चलने में किसी को सहायक होगा, उसी समय अधर्म द्रव्य; उसे ठहरने में सहायक होगा।

उत्तरः - धर्म और अधर्म द्रव्य उदासीन कारण हैं, यदि प्रेरक कारण होते तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती थी। धर्म द्रव्य जबरन किसी को चलने की प्रेरणा नहीं करता, अधर्म द्रव्य भी जबरन किसी को ठहरने की प्रेरणा नहीं करता। वैज्ञानिक; अधर्म द्रव्य को "मूमेन्ट्स् आफ इनर्सिया" - जड़त्व आघूर्ण का सिद्धान्त कहते हैं।

आकाश द्रव्य का स्वरूप एवं भेद

अवगास दाण जोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगा-गास-मिदि दुविहं ॥१९॥

अन्वयार्थ - (जीवादीणं) जीवादि समस्त द्रव्यों को (अवगास दाणजोग्गं) अवकाश देने योग्य (जेण्हं) जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा गया (आयासं) आकाश (वियाणं) जानो (लोगागासं) लोकाकाश (अल्लोगागासं) अलोकाकाश (इदि) इस प्रकार (दुविहं) आकाश दो प्रकार का है।

अर्थ - जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म और काल द्रव्यों को जो अवकाश देने योग्य है, उसे आकाश द्रव्य; जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। उस

आकाश के दो भेद हैं— १. लोकाकाश; २. अलोकाकाश।

प्रश्नः - आकाश द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तरः - जीवादि पाँच द्रव्यों को रहने के लिए जो अवकाश-स्थान दे, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।

प्रश्नः - आकाश द्रव्य का कार्य बताइये?

उत्तरः - अवकाश देना आकाश द्रव्य का कार्य है।

प्रश्नः - आकाश द्रव्य; जीवादि द्रव्यों के अवगाहन में कौन-सा निमित्त है?

उत्तरः - उदासीन निमित्त है।

लोकाकाश एवं अलोकाकाश की मर्यादा

धम्माऽ-धम्मा कालो, पुग्गल जीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥

अन्वयार्थ - (जावदिये) जितने (आयासे) आकाश में (धम्माधम्मा) धर्म और अधर्म (कालो) काल (य) और (पुग्गलजीवा) पुद्‌गल तथा जीव द्रव्य (संति) हैं (सो) वह (लोगो) लोकाकाश है (तत्तो परदो) उससे बाहर (अलोगुत्तो) अलोकाकाश कहा गया है।

अर्थ - जितने आकाश में जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, अकाश और काल हैं, वह लोकाकाश व उससे बाहर अलोकाकाश कहा गया है।

प्रश्नः - लोक किसे कहते हैं?

उत्तरः - जीव और अजीव द्रव्य जितने आकाश में पाए जावे, उतने आकाश को लोक कहते हैं।

प्रश्नः - अलोक किसे कहते हैं?

उत्तरः - लोक के बाहर केवल आकाश ही आकाश है, जहाँ अन्य द्रव्यों का निवास नहीं है, इस खाली पड़े हुए आकाश को अलोक कहते हैं।

प्रश्नः - लोकाकाश और अलोकाकाश किन्हें कहते हैं?

उत्तरः- लोक के आकाश को लोकाकाश और अलोक के आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

प्रश्नः - जब सभी द्रव्य एक ही लोकाकाश में रहते हैं तो सब एक क्यों नहीं हो जाते ?

उत्तरः- अगुरुलघु गुण के कारण सभी द्रव्य अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते, अतः एक कैसे हो सकते हैं अर्थात् नहीं हो सकते हैं।

प्रश्नः -लोकाकाश बड़ा है या अलोकाकाश ?

उत्तरः- अलोकाकाश बड़ा है, अलोकाकाश का अनन्तवाँ भाग लोकाकाश है।

काल द्रव्य का स्वरूप एवं भेद

दव्व परिवट्ट-रूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादी लक्खो, वट्टण लक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (दव्व परिवट्ट-रूवो) जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म आदि द्रव्यों के परिवर्तन में कारण हैं (सो) वह (कालो) कालद्रव्य (हवेइ) है (परिणामादीलक्खो) परिणाम आदि जिसका लक्षण है (ववहारो) वह व्यवहार काल है (य) और (वट्टण लक्खो) वर्तना लक्षण वाला (परमट्ठो) परमार्थ अर्थात् निश्चय काल है।

अर्थ - सभी द्रव्यों में जो परिवर्तन होता रहता है, इस परिवर्तन में जो कारण है, वह काल द्रव्य कहलाता है। काल द्रव्य के दो भेद हैं— १. व्यवहार काल; २. निश्चय काल। जिसका लक्षण; परिणाम आदि है, वह व्यवहार काल है और जिसका लक्षण; वर्तना है, वह निश्चय काल है।

प्रश्नः -व्यवहार काल एवं निश्चय काल समझाइये ?

उत्तरः-जैसे - काँटे वाली घड़ी में जो बीच की धुरी है, वह निश्चय काल का प्रतीक है एवं जो उसके सहारे; घण्टा, मिनिट, सेकेण्ड के काँटे घूमते हैं, वह व्यवहार काल का प्रतीक है।

प्रश्नः - काल द्रव्य; अन्य द्रव्यों के परिणमन में कौन-सा निमित्त है ?

उत्तरः - उदासीन निमित्त है।

प्रश्नः - वर्तना किसे कहते हैं ?

उत्तरः - समस्त द्रव्यों में सूक्ष्म परिवर्तन के निमित्त को वर्तना कहते हैं। **जैसे** - कपड़ा, मकान वस्त्रादि में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, सूक्ष्म परिवर्तन है। जिसके कारण कपड़ा मकानादि जीर्ण हो जाते हैं। मनुष्य, स्त्री; पचास वर्ष, पच्चीस वर्ष पुराने हो गए, यह काल द्रव्य का ही प्रभाव है।

प्रश्नः - परिणाम किसे कहते हैं ?

उत्तरः - समस्त द्रव्यों के स्थूल परिवर्तन के निमित्त को परिणाम कहते हैं।

प्रश्नः - परिणामादी आदि से यहाँ क्या लिया गया है ?

उत्तरः - परिणाम तथा क्रिया, परत्व और अपरत्व लिए गए हैं।

प्रश्नः - परत्व, अपरत्व किसे कहते हैं ?

उत्तरः - जहाँ बड़े-छोटे का व्यवहार होता है, वही परत्व-अपरत्व है।

निश्चय काल द्रव्य की संख्या एवं स्वरूप

लोयायास पदेसे, इक्-किक्-के जे, ठिया हु इक्-किक्का।
रयणाणं रासी इव ते, कालाणू असंख दव्वाणि ॥२२॥

अन्वयार्थ - (इक्किक्के) एक-एक (लोकायास पदेसे) लोकाकाश के प्रदेश पर (जे) जो (रयणाणं) रत्नों की (रासी इव) राशि अर्थात् ढ़ेरी के समान (इक्किक्का) एक-एक (कालाणू) काल द्रव्य के अणु (ठिया) स्थित हैं (ते) वे (हु) निश्चय से (असंख दव्वाणि) असंख्यात द्रव्य हैं।

अर्थ - लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर; एक-एक कालाणु रत्नों की राशि के समान स्थित हैं, वे कालाणु असंख्यात हैं।

प्रश्नः - काल द्रव्य को समझाते समय रत्नराशि का ही उदाहरण क्यों दिया ?

उत्तरः- जिस प्रकार रत्न कीमती होते हैं। उसी प्रकार समय (काल) कीमती है, रत्न कभी पुराने नहीं होते, रत्नों में धुन नहीं लगता, रखे-रखे आपस में चिपकते नहीं हैं। गेहुँ आदि की राशि तो धुन जाती, सड़ जाती है, पुरानी हो जाती है, चिपक जाती है, लेकिन रत्न राशि के साथ ऐसा नहीं होता हैं।

प्रश्नः - लोकाकाश में काल द्रव्य कैसे स्थित हैं? क्या वे आपस में चिपकते नहीं हैं।

उत्तरः- लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, लौकाकाश के एक-एक प्रदेश पर, एक-एक कालाणु रत्नराशि के समान स्थित है। **जैसे** - रत्नों की ढेरी में एक-एक रत्न; एक-दूसरे से मिल तो रहते हैं, किन्तु आपस में चिपकते नहीं हैं। वैसे ही लोकाकाश के प्रदेशों पर स्थित कालाणु भी आपस में चिपकते नहीं हैं।

प्रश्नः -कालाणु असंख्यात हैं, इसका प्रमाण क्या है?

उत्तरः- लोकाकाश के प्रदेश असंख्यात हैं, अतः उन पर स्थित कालाणु भी असंख्यात हैं।

छह द्रव्यों का उपसंहार एवं पाँच अस्तिकायों का कथन

एवं छब्भेय-मिदं, जीवा-जीवप्-पभेददो दव्वं ।
उत्तं काल विजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

अन्वयार्थ - (एवं) इस प्रकार (जीवाजीवप्पभेददो) जीव-अजीव के भेद से (इदं) यह (दव्वं) (छब्भेय) छह प्रकार का (उत्तं) कहा गया है (दु) और (काल विजुत्तं) काल द्रव्य को छोड़कर शेष (पंच) पाँच (अत्थिकाया) अस्तिकाय (णायव्वा) जानने चाहिए ।

अर्थ - संक्षेप से इस प्रकार जीव-अजीव के भेद से द्रव्य; छह प्रकार का कहा जाता है। काल द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य; अस्तिकाय जानने चाहिए ।

प्रश्नः -काल द्रव्य को अस्तिकाय क्यों नहीं कहा?

उत्तरः- काल द्रव्य के केवल एक ही प्रदेश होता है, (काल द्रव्य एक प्रदेशी है) इसलिए अस्तिकाय नहीं कहा ।

प्रश्नः - एक पुद्‌गल परमाणु भी एक प्रदेशी होता है, उसे अस्तिकाय क्यों कहा गया ?

उत्तरः- कालाणु सदा एक प्रदेश वाला ही रहता है, किन्तु पुद्‌गल परमाणु में विशेषता है कि वह एक प्रदेश वाला होकर भी स्कन्धरूप में परिणत होते ही नाना प्रदेश (संख्यात, असंख्यात, अनन्त) वाला हो जाता है। कालाणु में बहुप्रदेशीपने की योग्यता ही नहीं है, परमाणु में वह योग्यता है, इसलिए परमाणु को अस्तिकाय कहा गया है।

प्रश्नः - अणु-अणु समान होने पर भी कालाणु में बहुप्रदेशीपने की योग्यता क्यों नहीं है ?

उत्तरः- पुद्‌गल के अणु सभी समान होते हैं, परन्तु कालाणु; पुद्‌गल के अणुओं के समान नहीं हो सकते हैं। पुद्‌गल परमाणु में रूप, रस आदि पाए जाते हैं, इसलिए वह मूर्तिक है, स्कन्ध बन जाता है, परन्तु कालाणु अमूर्तिक है, स्पर्श, रसादि गुणों से रहित है, अतः उसमें बहुप्रदेशीपना नहीं बन पाता ।

अस्तिकाय का लक्षण

संति जदो तेणेदे, अत्थीत्ति भणंति जिणवरा जम्हा ।
काया इव बहुदेसा, तम्हा काया य अत्थिकाया य ।।२४।।

अन्वयार्थ - (जदो) क्योंकि (एदे) ये द्रव्य (जीवादि ६) (सन्ति) सदा विद्यमान रहते हैं (तेण) इसलिए (जिणवरा) जिनेन्द्रदेव (अत्थीत्ति) अस्ति ऐसा (भणंति) कहते हैं (य) और (जम्हा) क्योंकि (काया इव) शरीर के समान (बहुदेसा) बहुप्रदेशी हैं (तम्हा) इसलिए (काया) 'काया' ऐसा कहते हैं (य) और (अत्थि काया) दोनों मिलने पर 'अस्तिकाय' कहलाते हैं।

अर्थ - अस्तिकाय में दो शब्द हैं— एक अस्ति और दूसरा काय। जीव, पुद्‍गल, धर्म, अधर्म और आकाश तथा काल; ये सदा रहते हैं, इसलिए जिनेन्द्रदेव इनको 'अस्ति' कहते हैं तथा (काल को छोड़कर) शरीर के समान बहुप्रदेशी हैं, अतः काय ऐसा कहते हैं। दोनों मिलने पर 'अस्तिकाय' कहलाते हैं।

प्रश्नः - अस्ति किसे कहते हैं?

उत्तरः- जो सदा विद्यमान रहे, जिसका कभी नाश नहीं हो, वह 'अस्ति' कहलाता है।

प्रश्नः - 'अस्ति' द्रव्य कितने हैं?

उत्तरः- जीव, पुद्‍गल, धर्मादि छहों द्रव्य 'अस्ति' रूप हैं।

प्रश्नः - 'काय' किसे कहते हैं?

उत्तरः- जो शरीर के समान बहुप्रदेशी हो, उसे काय कहते हैं।

प्रश्नः - 'काय' द्रव्य कितने हैं?

उत्तरः- काल द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य; कायवान हैं, काल एक प्रदेशी ही है।

प्रश्नः - अस्तिकाय किसे कहते हैं?

उत्तरः- जो अस्तिरूप भी हो तथा कायवान भी हो, वह अस्तिकाय है।

प्रश्नः - अस्तिकाय कितने हैं?

उत्तरः- जीव, पुद्‍गल, धर्म, अधर्म और आकाश; पाँच अस्तिकाय हैं।

प्रश्नः - काल द्रव्य अस्तिकाय क्यों नहीं है?

उत्तरः- काल द्रव्य अस्तिरूप तो है, किन्तु कायवान नहीं है, अतः अस्तिकाय नहीं है।

छहों द्रव्यों में प्रदेशों की संख्या

होंति असंखा जीवे, धम्मा-धम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्-सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

अन्वयार्थ - (जीवे) एक जीव में (धम्माधम्मे) धर्म और अधर्म द्रव्य में

(असंख्या) असंख्यात (आयासे) आकाश में (अणंत) अनन्त (मुत्ते) पुद्‌गल द्रव्य में (तिविह) तीन प्रकार के संख्यात, असंख्यात और अनन्त (पदेसा) प्रदेश (होंति) होते हैं (कालस्स) काल द्रव्य का (एगो) केवल एक ही प्रदेश होता है (तेण) इसलिए (सो) वह काल (काओ) काय अर्थात् बहुप्रदेशी (ण) नहीं है।

अर्थ - एक जीव द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य; इन तीनों के असंख्यात प्रदेश हैं। आकाश; अनन्त प्रदेशी है। पुद्‌गल; संख्यात, असंख्यात व अनन्त प्रदेशी है तथा काल द्रव्य; एक प्रदेशी है।

प्रश्नः - एक जीव के असंख्यात प्रदेशों का प्रमाण क्या है ?

उत्तरः- एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं, क्योंकि वह असंख्यात प्रदेशी सम्पूर्ण लोकाकाश को व्याप्त होने की क्षमता रखता है।

अथवा

लोकपूरण समुद्‌घात में जीव के प्रदेश सम्पूर्ण लोकाकाश में फैल जाते हैं, इससे भी सिद्ध है कि जीव के असंख्यात प्रदेश हैं।

प्रश्नः - धर्म और अधर्म द्रव्य के असंख्यात प्रदेश की प्रमाणता दीजिए ?

उत्तरः- धर्म और अधर्म द्रव्य भी असंख्यात प्रदेशी हैं, क्योंकि ये दोनों समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं और लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है, अतः उसमें व्याप्त होकर रहने की दृष्टि से धर्म और अधर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं।

प्रश्नः - आकाश के अनन्त प्रदेशों की प्रमाणता दीजिए ?

उत्तरः- आकाश अनन्त प्रदेशी है, क्योंकि वह लोक के ऊपर, नीचे और अलग-बगल में चारों ओर से फैला हुआ (कहाँ तक फैला हुआ है, इसकी कोई सीमा नहीं है) है, अतः आकाश का अनन्त प्रदेशीपना सिद्ध है।

प्रश्नः - मूर्त पुद्‌गल द्रव्य में संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश

सिद्ध कीजिए ?

उत्तरः- मूर्त पुद्गल द्रव्य में संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश पाए जाते हैं। इसका कारण है कि पुद्गलों में पूरण और गलन होता रहता है, अतः वे कभी परमाणुरूप से बिखर जाते हैं और कभी आपस में मिलकर स्कन्ध बन जाते हैं। उनमें कोई स्कन्ध; संख्यात अणु मिलकर संख्यात प्रदेशी, कोई असंख्यात अणु मिलकर असंख्यात प्रदेशी तथा कई अनन्त परमाणुओं के मिलने से अनन्त प्रदेशी होते हैं। (जब तक परमाणु अलग-अलग रहते हैं तब तक वे एकप्रदेशी होते हैं)।

प्रश्नः - काल द्रव्य; कायवान क्यों नहीं है ?

उत्तरः- काल द्रव्य एक प्रदेशी है, अतः वह कायवान नहीं है।

एक पुद्गल परमाणु; उपचार से बहुप्रदेशी है

एय पदेसो वि अणू, णाणा खंधप्-पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥

अन्वयार्थ - (एयपदेशो वि) एक प्रदेश वाला भी (अणु) पुद्गल परमाणु (णाण-खंधप्पदेसदो) नाना स्कन्धों का कारण होने से (बहुदेसो) बहुप्रदेशी (होदि) होता है (य) और (तेण) इसलिए (सव्वण्हु) सर्वज्ञदेव (उवयारा) उपचार से (काओ) उसे काय अर्थात् बहु प्रदेशी (भणंति) कहते हैं।

अर्थ - पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी होता है तो भी सर्वज्ञदेव ने उसे उपचार से बहुप्रदेशी कहा है, क्योंकि वह नाना स्कन्धरूप होने की योग्यता रखता है।

प्रश्नः - उपचार किसे कहते हैं ?

उत्तरः- किसी वस्तु को किसी निमित्त स्वभाव से भिन्नरूप कहना उपचार कहलाता है। **जैसे** - शुद्ध पुद्गल परमाणु स्वभाव से एक प्रदेशी है, किन्तु अन्य के (पुद्गलों के) संयोग से वह (संख्यात, असंख्यात,

अनन्त) बहुप्रदेशी कहलाता है।

प्रश्नः - परमाणु, स्कन्धरूप किस गुण के कारण हो जाता है ?

उत्तरः - पुद्गल परमाणु में स्निग्ध-रूक्ष गुण पाए जाते हैं। स्निग्ध-स्निन्ध या स्निग्ध-रूक्ष या रूक्ष-रूक्ष या रूक्ष-स्निग्ध गुण के परमाणु मिलने से परमाणु, स्कन्ध पर्याय को प्राप्त होता है।

प्रदेश का लक्षण

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणु उट्-टद्धं।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वा-णुट् ठाण दाण-रिहं ॥२७॥

अन्वयार्थ - (जावदियं) जितना (आयासं) आकाश (अविभागीपुग्गलाणुउट्टद्धं) एक अविभागी अर्थात् जिसका दूसरा विभाग न हो सके ऐसे पुद्गल परमाणु से व्याप्त हो (तं) उसे (खु) निश्चय से (सव्वाणुट्ठाण दाणरिहं) समस्त अणुओं को स्थान देने में समर्थ (पदेसं) प्रदेश (जाणे) जानो।

अर्थ - एक पुद्गल परमाणु जितना आकाश घेरता है, निश्चय से उसे समस्त अणुओं को स्थान देने में समर्थ; प्रदेश जानो। (पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को अणु कहते हैं)

प्रश्नः - प्रदेश एवं परमाणु का लक्षण बताइये ?

उत्तरः - एक पुद्गल परमाणु जितने आकाश क्षेत्र को घेरे, उसे प्रदेश कहते हैं एवं आकाश के एक प्रदेश में जितना पुद्गल समाता है या पुद्गल के अविभाज्य हिस्से को परमाणु कहते हैं।

प्रश्नः - यदि परमाणु जितने क्षेत्र में रहता है, उसे प्रदेश कहते हैं तो वहाँ अन्य परमाणु कैसे रहेंगे ?

उत्तरः - जैसे - कोई व्यक्ति में जाकर एक हजार प्रकार की वनस्पति की एक-एक पत्ती लाकर, उन हजार पत्तियों का काढ़ा बनाये एवं उस काढ़े में से एक-सुई के द्वारा; सुई की नोक के बराबर काढ़ा निकाले तो उस सुई के नोक के बराबर काढ़े में एक हजार प्रकार

वनस्पति का सत्त्व (अस्तित्व) है।

उसी प्रकार की वनस्पति के काढ़े में क्रमशः दस हजार, पचास हजार, एक लाख प्रकार की वनस्पति का सत्त्व (अस्तित्व) है। जैसे वनस्पतियों के पत्तों की संख्या बढ़ने पर भी बूँद का आकार एवं वजन नहीं बढ़ता है, सुई के नोक की बूँद बराबर ही रहता है। उसी प्रकार आकाश द्रव्य के एक प्रदेश में वह अवगाहन शक्ति है, जिसमें सभी द्रव्यों के परमाणु समा जाते हैं।

प्रश्नः - जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों की संख्या बताइये ?

उत्तरः - जीव - अनन्तानन्त हैं।

पुद्‌गल - जीव द्रव्य से अनन्तगुणे पुद्‌गल हैं।

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य - एक-एक हैं।

आकाश - एक अखण्ड द्रव्य है। छः द्रव्यों के निवास की अपेक्षा इसके दो भेद हैं— १. लोकाकाश; २. अलोकाकाश ।

काल द्रव्य - असंख्यात हैं फिर भी निश्चय काल और व्यवहार काल की अपेक्षा दो भेद हैं।

प्रश्नः - आपके पास अभी कितने द्रव्य हैं, समझाइये ?

उत्तरः - हमारे पास अभी छहों द्रव्य हैं— हम जीव हैं। शरीर; पुद्‌गल द्रव्य है। हमारे बैठने में अधर्म द्रव्य सहायक है। हमारे हाथ-पैरों को उठाने में धर्म द्रव्य सहायक है। हम आकाश में बैठे हैं। प्रति समय सूक्ष्म परिणमन में निश्चय काल कारण है तथा आज हम बीस वर्ष पुराने हो गये, यह व्यवहार काल बता रहा है।

दूसरे; अजीव अधिकार में प्रथम अध्याय समाप्त

द्वितीयोऽध्यायः

आस्त्रवादि भी जीवाजीव के भेद हैं

आसव बंधण संवर, णिज्जर मुक्खो सपुण्ण पावा जे।
जीवा-जीव विसेसा, ते वि समासेण पभणामो ॥२८॥

अन्वयार्थ - (जे) जो (आसव बंधण संवर णिज्जर मुक्खो) आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, (सपुण्ण पावा) पुण्य, पाप सहित (जीवाजीव विसेसा) जीव और अजीव द्रव्य के विशेष भेद हैं (तेवि) उन्हें भी (समासेण) संक्षेप से (पभणामो) आगे कहते हैं।

अर्थ - जो आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तथा पुण्य, पाप; ये सात जीव-अजीव द्रव्य के ही विशेष भेद हैं, जो सब मिलकर नौ होते हैं, उन्हें भी आगे संक्षेप से कहते हैं।

प्रश्नः - द्वितीय-अध्याय में वर्णित विषय बताइये?

उत्तरः- द्वितीय अध्याय २८ वीं गाथा से प्रारम्भ होता है, जिसमें आस्त्रव आदि तत्त्वों को जीव-अजीव के ही विशेष भेद में निरूपित किया है। आगे इन्हीं आस्त्रव आदि तत्त्वों को क्रमशः वर्णित किया है। गाथा संख्या २९, ३०, ३१ में आस्त्रव तत्त्व का लक्षण एवं उनके भेद। गाथा संख्या ३२, ३३ में बन्ध तत्त्व का लक्षण एवं उसके भेद। गाथा संख्या ३४, ३५ में संवर तत्त्व का लक्षण एवं उसके भेद। गाथा संख्या ३६ में निर्जरा तत्त्व का लक्षण एवं उसके भेद। गाथा संख्या ३७ में मोक्ष तत्त्व का लक्षण एवं उसके भेद। गाथा संख्या ३८ में पुण्य-पाप का लक्षण एवं उसके भेद बताकर; इन ग्यारह गाथाओं में द्वितीय अध्याय पूर्ण किया है।

प्रश्नः -मूल द्रव्य कितने हैं?

उत्तरः-दो हैं —— १. जीव; २. अजीव।

प्रश्नः - मूल तत्त्व कितने हैं?

उत्तरः- दो हैं —— १. जीव; २. अजीव ।

प्रश्नः - तत्त्व विशेष रूप से कितने हैं।

उत्तरः- विशेष रूप से तत्त्व सात हैं—— १. जीव; २. अजीव; ३. आस्रव; ४. बन्ध; ५. संवर; ६. निर्जरा और ७. मोक्ष ।

प्रश्नः - तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तरः- 'तस्य भावः तत्त्वं' जिस वस्तु का जो भाव है, वह उसका तत्त्व है।

प्रश्नः - पदार्थ कितने हैं ?

उत्तरः- सात तत्त्वों में पुण्य-पाप को मिलाने पर जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप; ये नौ पदार्थ हैं।

प्रश्नः - पदार्थ किसे कहते हैं ?

उत्तरः- १. प्रयोजन भूत अर्थ को पदार्थ कहते हैं। २. व्यापक अर्थ को पदार्थ कहते हैं। ३. जो द्रव्य, गुण, पर्याय सहित हो, उसे पदार्थ कहते हैं।

प्रश्नः - नौ पदार्थों का स्वरूप संक्षेप में बताइये ?

उत्तरः- १. जीव-जिसमें चेतना पायी जाए, वह जीव है।

२. अजीव-जिसमें चेतना नहीं है, वह अजीव है।

३. आस्रव-कर्मों का आना आस्रव है।

४. बन्ध-कर्मों का आत्मा के साथ दूध पानी की तरह मिल जाना बन्ध है।

५. संवर-आत्मा में कर्मों का आना; रुक जाना संवर है।

६. निर्जरा-कर्मों का एक देश खिर जाना या झड़ जाना निर्जरा है।

७. मोक्ष-कर्मों का सर्वदेश खिर जाना या झड़ जाना मोक्ष है।

८. पुण्य-जो आत्मा को पवित्र करे, वह पुण्य कहलाता है।

९. पाप-जो आत्मा की शुभ से रक्षा करे अर्थात् जो आत्मा का पतन करे, वह पाप कहलाता है।

आस्रव का लक्षण एवं भेद

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्-पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो, कम्मा-सवणं परो होदि ॥२९॥

अन्वयार्थ - (अप्पणो) आत्मा के (जेण) जिस (परिणामेण) परिणाम से (कम्मं) पुद्‌गल कर्म (आसवदि) आता है (स) वह (जिणुत्तो) जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया (भावासवो) भावास्रव (विण्णेओ) जानना चाहिए (कम्मा-सवणं) कर्मों का आना (परो) द्रव्यास्रव (होदि) होता है।

अर्थ - आत्मा के जिस परिणाम से पुद्‌गल कर्म आता है, वह जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया, भावास्रव जानना चाहिए तथा कर्मों का आना द्रव्यास्रव होता है।

प्रश्नः - आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तरः- आत्मा में कर्मों का आना आस्रव कहलाता है।

प्रश्नः - आस्रव के कितने भेद हैं?

उत्तरः- दो भेद हैं — १. भावास्रव; २. द्रव्यास्रव।

प्रश्नः - भावास्रव किसे कहते हैं?

उत्तरः- मिथ्यात्व, अवरति, प्रमाद, कषाय और योगरूप; जिन परिणामों से कर्मों का आस्रव होता है, उन परिणामों को भावास्रव कहते हैं। **जैसे-** नाव में पानी आने के लिए छेद हो जाता है।

प्रश्नः - द्रव्यास्रव का स्वरूप बताइये?

उत्तरः- ज्ञानावरणादि पुद्‌गल कर्मों का आना द्रव्यास्रव कहलाता है। **जैसे-** छेद के माध्यम से नाव में पानी आना।

प्रश्नः - परिणाम किसे कहते हैं?

उत्तरः- आत्मा के शुभाशुभ भाव; परिणाम कहलाते हैं।

भाव-आस्त्रव के नाम एवं भेद

मिच्छत्ता-विरदि पमाद, जोग कोहा-दओऽथ विण्णेया।
पण पण पणदस तिय चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

अन्वयार्थ - (अथ) पहले (पुव्वस्स) पूर्व के अर्थात् भावास्त्रव के भेद (मिच्छत्ता-विरदि पमाद जोग कोहादओ) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग तथा कषाय हैं (दु) और (कमसो) क्रम से वे (पण) पाँच (पणदस) पन्द्रह (तिय) तीन (चदु) चार प्रकार के (विण्णेया) जानने चाहिए।

अर्थ - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग एवं कषाय; ये भावास्त्रव के भेद क्रम से पाँच, पाँच, पन्द्रह, तीन और चार प्रकार के जानने चाहिए।

प्रश्नः - संक्षेप में भावास्त्रव के कितने भेद हैं?

उत्तरः- संक्षेप में भावास्त्रव के पाँच भेद हैं— मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय।

प्रश्नः - विस्तार से भावास्त्रव के भेद बताइये?

उत्तरः- विस्तार से ३२ भेद हैं — ५ मिथ्यात्व; ५ अविरति; १५ प्रमाद; ३ योग; ४ कषाय; ये ३२ हैं।

प्रश्नः - मिथ्यात्व किसे कहते हैं? इसमें पाँच भेद कौन से हैं?

उत्तरः- सम्यक् तत्त्वार्थों का श्रद्धान नहीं होना मिथ्यात्व कहलाता है। इसके पाँच भेद है— एकान्त, वितरीत, संशय, वैनयिक एवं अज्ञान।

प्रश्नः - एकान्त मिथ्यात्व का स्वरूप बताइये?

उत्तरः- अनेक धर्मात्मक वस्तु में यह इसी प्रकार है, इस प्रकार के एकान्त अभिप्राय को एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं। **जैसे**- वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है, किन्तु कोई (बौद्ध) मत वाले वस्तु को अनित्य ही मानते हैं तथा कोई (वेदान्ती) सर्वथा नित्य ही मानते हैं। (अन्त का अर्थ; धर्म, गुण है।)

प्रश्नः - विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तरः- उल्टे श्रद्धान को विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं। **जैसे** - केवली के कवलाहार होता है, परिग्रह सहित भी गुरु हो सकता है तथा स्त्री को भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है। आर्यिकाओं की पूजा नहीं होती, ऐसा कहना भी विपरीत मिथ्यात्व है।

प्रश्नः - संशय मिथ्यात्व का लक्षण बताओ ?

उत्तरः- चलायमान श्रद्धा को संशय मिथ्यात्व कहते हैं। **जैसे**- अहिंसा में धर्म हैं या नहीं, सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान व सम्यक्‌चारित्र; ये मोक्ष के मार्ग हैं या नहीं ।

प्रश्नः- वैनयिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तरः- सभी प्रकार के देव; सरागी-वीतरागी, सभी प्रकार के गुरु; परिग्रह रहित-परिग्रह सहित एवं सभी प्रकार के मतों (धर्मों) को समान मानना वैनयिक मिथ्यात्व है।

प्रश्नः - अज्ञान मिथ्यात्व का लक्षण बताइये ?

उत्तरः- हिताहित की परीक्षा न करके श्रद्धान करना, अज्ञान मिथ्यात्व है। **जैसे**- देवताओं को पशुओं की बलि चढ़ाना, शराब आदि चढ़ाना।

प्रश्नः - अविरति किसे कहते हैं, उसके पाँच भेद कौन से हैं ?

उत्तरः- पाँच पापों से विरत (त्याग) नहीं होना अविरति है। उसके पाँच भेद-हिंसा अवरित, असत्य अविरति, चौर्य अवरति, कुशील अविरति और परिग्रह अविरति ।

प्रश्नः - प्रमाद किसे कहते हैं ? इसके पन्द्रह भेद बताओ ?

उत्तरः- शुभ क्रियाओं में उत्साहपूर्व प्रवृत्ति नहीं करना प्रमाद है या स्वरूप की असावधानी को प्रमाद कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद— ४ विकथा; ४ कषाय; ५ इन्द्रिय विषय; १ निद्रा और १ स्नेह है।

प्रश्नः - योग किसे कहते हैं ? उसके भेद बताइये ?

उत्तरः- मन, वचन, काय की क्रिया को योग कहते हैं । इसके तीन भेद-

मनोयोग; वचनयोग और काययोग ।

प्रश्नः - कषाय के चार भेद कौन से हैं ?

उत्तरः - १. क्रोध; २. मान; ३. माया और ४. लोभ ।

द्रव्य-आस्त्रव के नाम एवं भेद

णाणा-वरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समा-सवदि ।
दव्वा-सवो स णेओ, अणेय भेयो जिणक्खादो ॥३१॥

अन्वयार्थ - (णाणावरणादीणं) ज्ञानावरण आदि कर्मों के (जोग्गं) योग्य (जं) जे (पुग्गलं) पुद्गल (समासवदि) आता है (स) वह (जिणक्खादो) जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ (दव्वासवो) द्रव्यास्त्रव (अणेय भेदो) अनेक प्रकार का (णेओ) जानना चाहिए ।

अर्थ - ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल आता है, वह द्रव्यास्त्रव जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा हुआ अनेक प्रकार का जानना चाहिए।

प्रश्नः - द्रव्यास्त्रव किसे कहते हैं ?

उत्तरः - ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल आता है, उसे द्रव्यास्त्रव कहते हैं।

प्रश्नः - संक्षेप में द्रव्यास्त्रव कितने प्रकार का है ?

उत्तरः - द्रव्यास्त्रव संक्षेप में आठ प्रकार का है — ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ।

प्रश्नः - विस्तार से द्रव्यास्त्रव के भेद बताइये ?

उत्तरः - विस्तार से- ज्ञानावरण ५; दर्शनावरण ९; वेदनीय २; मोहनीय २८; आयु ४; नाम ९३; गोत्र २ और अन्तराय के ५ भेद से १४८ प्रकार का द्रव्यास्त्रव है। सूक्ष्मदृष्टि से इनके भी परिणामों की तारतम्यता की अपेक्षा से संख्यात, असंख्यात भेद भी हो जाते हैं इसलिए ग्रन्थकार ने द्रव्यास्त्रव को (अणेय भेयो) अनेक भेद वाला कहा है।

प्रज्ञाश्रमण मुनि

बन्ध का लक्षण एवं भेद

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदण भावेण भाव बंधो सो।
कम्माद-पदेसाणं, अण्णोण्ण पवेसणं इदरो ॥३२॥

अन्वयार्थ - (जेण) जिस (चेदणभावेण) मिथ्यात्वादिरूप आत्मपरिणाम से (कम्मं) कर्म (बज्झदि) बँधता है (सो) वह (भाव बंधो) भाव बन्ध है (दु) और (कम्माद पदेसाणं) कर्म और आत्मा के प्रदेशों को (अण्णोण्ण पवेसणं) एकमेक होना (इदरो) द्रव्य बन्ध है।

अर्थ - मिथ्यात्वादिरूप जिन चेतन परिणामों से कर्म बन्ध होता है, वह भाव बन्ध है और कर्म तथा आत्म-प्रदेशों का एकमेव होना द्रव्य बन्ध है।

प्रश्नः - बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तरः- जीव; कषाय सहित होने से कर्म के योग्य कार्मण वर्गणारूप पुद्गल परमाणुओं को जो ग्रहण करता है। **जैसे** - अग्नि से तपा हुआ लोहे का गोला चारों ओर से अपनी ओर पानी सोख लेता है।

प्रश्नः -बन्ध के कितने भेद हैं?

उत्तरः-दो भेद हैं— १. भाव बन्ध; २. द्रव्य बन्ध।

प्रश्नः - भाव बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तरः-जिन मिथ्यात्वादि आत्म-परिणामों से कर्म बँधता है, वह भाव बन्ध कहलाता है।

प्रश्नः - द्रव्य बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तरः- जो कर्म बन्ध होता है, उसे द्रव्य बन्ध कहते हैं।

प्रश्नः - आत्मा अमूर्तिक है, कर्म मूर्तिक हैं, ऐसी स्थिति में आत्मा में कर्म बन्धन कैसे हो सकता है? बन्ध तो मूर्तिक के साथ होता है?

उत्तरः- आत्मा अमूर्तिक है तथापि संसारी आत्मा में अनादिकाल से कर्म चिपटे हुए हैं, अतः वह कथञ्चित् मूर्तिक है। मूर्तिक होने के

कारण ही उसका कर्मों के साथ बन्ध होता है। यहाँ मूर्तिक संसारी आत्मा के साथ मूर्तिक कर्मों का बन्ध जानना चाहिए। (मूर्तिक के साथ ही मूर्तिक का बन्ध है।)

बन्ध के प्रकार एवं कारण

पयडिट्-ठिदि अणुभागप्-, पदेस भेदा दु चदु विधो बंधो।
जोगा पयडि पदेसा, ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

अन्वयार्थ - (बन्धो) बन्ध (पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेसभेदा) प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से (चदु विधो) चार प्रकार का है (दु) और (पयडि पदेसा) प्रकृति तथा प्रदेश बन्ध (जोगा) योग से (ठिदि अणुभागा) स्थिति और अनुभाग बन्ध (कसायदो) कषाय से (होंति) होते हैं।

अर्थ - प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध के भेद से बन्ध चार प्रकार का है। इनमें प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध; योग से तथा स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध; कषाय से होते हैं।

प्रश्नः -प्रकृति बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तरः- कर्मों के स्वभाव को प्रकृतिबन्ध कहते हैं। **जैसे**- ज्ञानावरणादि।

प्रश्नः -स्थिति बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तरः- ज्ञानावरणादि कर्मों के रस विशेष को अनुभाग बन्ध कहते हैं।

प्रश्नः - अनुभाग बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तरः- ज्ञानावरणादि कर्मों के रस विशेष को अनुभाग बन्ध कहते हैं।

प्रश्नः -प्रदेश बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तरः- ज्ञानावरणादि कर्मरूप होने वाले पुद्गल के परमाणुओं की संख्या को प्रदेश बन्ध कहते हैं।

प्रश्नः - चार प्रकार बन्धों का निमित्त क्या है?

उत्तरः- इन चार प्रकार के बन्धों में प्रकृति और प्रदेश बन्ध; योग के निमित्त से होते हैं तथा स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध; कषाय के निमित्त

से होते हैं।

प्रश्नः - चारों बन्धों को समझाइये ?

उत्तरः- जैसे - औषधी की प्रकृति है, रोग दूर करना। औषधि में रोग दूर करने की शक्ति जब तक है, उसे स्थिति कहते हैं। औषधि की पावरशक्ति-पुटेन्सी को अनुभाग या अनुभव कहते हैं एवं औषधी की गोली के परमाणुओं को प्रदेश कहते हैं।

संवर का लक्षण एवं भेद

चेदण परिणामो जो, कम्मस्-सासव णिरोहणे हेदु।
सो भाव संवरो खलु, दव्वासव रोहणे अण्णो ॥३४॥

अन्वयार्थ - (जो) जो (चेदण परिणामो) आत्मा का भाव (कम्मस्स) कर्मपुद्गल के (आसव णिरोहणे) आस्रव के रोकने में (हेदू) कारण है (सो) वह (भाव संवरो) भावसंवर है (दव्व) कर्मरूप पुद्गल द्रव्य का (आसवरोहणे) आस्रव रुकना (खलु) निश्चय से (अण्णे) अन्य अर्थात् द्रव्य संवर है।

अर्थ - आत्मा का जो परिणाम पुद्गल कर्म के रोकने में कारण है, वह भाव संवर है तथा कर्मरूप पुद्गल द्रव्य का आस्रव रुकना निश्चय से द्रव्य संवर है।

प्रश्नः -संवर के कितने भेद हैं ?

उत्तरः- दो भेद हैं—— १. भाव संवर; २. द्रव्य संवर।

प्रश्नः - भाव संवर किसे कहते हैं ?

उत्तरः- आस्रव को रोकने में कारणभूत; आत्म परिणाम भाव संवर है।

प्रश्नः -द्रव्य संवर किसे कहते हैं ?

उत्तरः- कर्मरूप पुद्गल द्रव्य का आस्रव रुकना द्रव्य संवर है।

भाव संवर के नाम एवं भेद

वद समिदी गुत्तीओ, धम्माणु-पेहा परीसह-जओ य।
चारित्तं बहुभेया, णायव्वा भाव-संवर विसेसा ॥३५॥

अन्वयार्थ - (वद समिदी गुत्तीओ) व्रत, समिति, गुप्ति (धम्माणुपेहा) धर्म, अनुप्रेक्षा (परीसहजओ) परीषहजय (य) और (चारित्रं) चारित्र (बहुभेया) ये अनेक प्रकार के (भाव संवर विसेसा) भावसंवर के भेद (णायव्वा) जानना चाहिए।

अर्थ - व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र; ये अनेक प्रकार के भाव संवर के भेद जानना चाहिए ।

प्रश्नः - संक्षेप में भाव संवर के कितने भेद हैं?

उत्तरः- सात भेद हैं — व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र ।

प्रश्नः - विस्तार से भाव संवर के भेद बताइये?

उत्तरः- विस्तार से भाव संवर के ६२ भेद है — ५ व्रत; ५ समिति; ३ गुप्ति; १० धर्म; १२ अनुप्रेक्षा; २२ परीषहजय और ५ चारित्र — ५+५+३+ १०+१२+२२+५ = ६२ ।

प्रश्नः - व्रत किसे कहते हैं? पाँच व्रतों के नाम बताओ?

उत्तरः- पाँच पापों का त्याग करना व्रत है। पाँच व्रत; अहिंसा व्रत, सत्य व्रत, अचौर्य व्रत, ब्रह्मचर्य व्रत और अपरिग्रह व्रत ।

प्रश्नः - समिति किसे कहते हैं? पाँच समितियाँ कौन-सीं हैं?

उत्तरः- जीवों की रक्षा के लिए यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करने को समिति कहते हैं, वे पाँच हैं— १.ईर्या समिति; २.भाषा समिति; ३.एषणा समिति; ४.आदान-निक्षेपण समिति और ५. प्रतिष्ठापना या व्युत्सर्ग समिति ।

प्रश्नः - गुप्ति किसे कहते हैं? उसके तीन भेद बताइये?

उत्तरः- संसार भ्रमण के कारणभूत मन, वचन, काय; तीनों योगों का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है। उसके तीन भेद-मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति ।

प्रश्नः - धर्म किसे कहते हैं? उसके दस भेद बताइये?

उत्तरः- जो आत्मा को संसार के दुःखों से छुड़ाकर, उत्तम स्थान में प्राप्त करावे, उसे धर्म कहते हैं। **दस धर्म** - १.उत्तम क्षमा; २.उत्तम मार्दव; ३.उत्तम आर्जव; ४.उत्तम शौच; ५.उत्तम सत्य; ६.उत्तम संयम; ७. उत्तम तप; ८. उत्तम त्याग; ९. उत्तम आकिञ्चन्य; १०.उत्तम ब्रह्मचर्य ।

प्रश्नः -अनुप्रेक्षा का लक्षण व उसके बारह भेद बताइये ?

उत्तरः- शरीरादिक के स्वरूप का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। बारह अनुप्रेक्षाएँ— १.अनित्य; २.अशरण; ३.संसार; ४.एकत्व; ५.अन्यत्व; ६.अशुचि; ७.आस्रव; ८.संवर; ९.निर्जरा; १०.लोक; ११.बोधिदुर्लभ और १२.धर्म ।

प्रश्नः -परीषहजय किसे कहते हैं ? उसके बाइस भेद बताइये ?

उत्तरः- क्षुधा, तृषा (भूख-प्यास) आदि की वेदना होने पर, कर्मों की निर्जरा के लिए, उसे शान्त भावों से सह लेना परीषहजय कहलाता है। **बाइस परीषह**- १.क्षुधा; २.तृषा; ३.शीत; ४.उष्ण; ५.दंशमशक; ६. नाग्न्य; ७. अरति; ८. स्त्री; ९. चर्या; १०. निषद्या; ११. शय्या; १२. आक्रोश; १३. वध; १४. याचना; १५. अलाभ; १६. रोग; १७.तृणस्पर्श; १८.मल; १९.सत्कार-पुरस्कार; २०. प्रज्ञा; २१. अज्ञान; २२.अदर्शन ।

प्रश्नः -चारित्र का लक्षण बताकर, उसके पाँच भेद बताइये ?

उत्तरः- कर्मों के आस्रव में कारणभूत बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं के रोकने को चारित्र कहते हैं। पाँच प्रकार का चारित्र — १. सामायिक; २. छेदोपस्थापना; ३. परिहारविशुद्धि; ४. सूक्ष्मसाम्पराय और ५. यथाख्यात ।

प्रश्नः - उपसर्ग और परीषह में क्या अन्तर है ?

उत्तरः- उपसर्ग कारण है और परीषह कार्य है।

निर्जरा का लक्षण एवं भेद

जह कालेण तवेण य, भुत्त रसं कम्म पुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया, तस्-सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ।।३६।।

अन्वयार्थ - (जह कालेण) यथाकाल में अर्थात् अवधि पूरी होने पर (य) और (तवेण) तप से (भुत्त रसं) जिसका फल भोग लिया है (कम्म पुग्गलं) ऐसा कर्म पुद्गल (जेण) जिस (भावेण) भाव से (सडदि) झड़ जाता है (च) और (तस्सडणं) कर्मों का झड़ना (इदि) इस प्रकार (णिज्जरा) निर्जरा (दुविहा) दो प्रकार की (णेया) जाननी चाहिए ।

अर्थ - अवधि पूरी होने पर और तप से जिसका फल भोग लिया है, ऐसा पुद्गल कर्म; जिन भावों से झड़ जाता हैं, वह भाव निर्जरा है और कर्मों का झड़ना द्रव्य निर्जरा है, इस प्रकार निर्जरा दो प्रकार की जाननी चाहिए ।

प्रश्नः - निर्जरा किसे कहते हैं? उसके भेद बताइये ?

उत्तरः - बँधे हुए कर्मों का अंशतः झड़ना निर्जरा कहलाती है। निर्जरा के दो भेद हैं —— १. भाव निर्जरा; २. द्रव्य निर्जरा । (दूसरे प्रकार से) - १. सविपाक; २. अविपाक निर्जरा ।

प्रश्नः - भाव निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तरः - जिन परिणामों से बँधे हुए कर्म एकदेश झड़ जाते हैं, उसे भाव निर्जरा कहते हैं।

प्रश्नः - द्रव्य निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तरः - बँधे हुए कर्मों का एकदेश निर्जरित होना द्रव्य निर्जरा है।

प्रश्नः - सविपाक निर्जरा बताइये ?

उत्तरः - अपनी अवधि पाकर या फल देकर बँधे हुए कर्मों का अंशतः झड़ना सविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा; समय के अनुसार पक कर अपने आप गिरे हुए फल के समान होती है।

प्रश्नः - अविपाक निर्जरा बताइये ?

उत्तरः- तपश्चरण के द्वारा अवधि के पहले ही बँधे हुए कर्मों का एकदेश झड़ना अविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा; पाल में डालकर पकाये गये फल के समान होती है।

प्रश्नः- मोक्षमार्ग की सहचारी या मुक्ति में कारणभूत निर्जरा कौन-सी है ?

उत्तरः- अविपाक निर्जरा मोक्षमार्ग की सहकारी है; कारण कि सविपाक निर्जरा **'गजस्नान'** के समान अप्रयोजनीय है, क्योंकि हाथी नहाने के बाद भी अपनी पीठ पर पुनः धूल ड़ाल लेता है।

प्रश्नः - निर्जरा में विशेष कार्यकारी कौन है व कैसे ?

उत्तरः- निर्जरा में विशेष कार्यकारी तप है। बिना तप के आत्मा कभी भी शुद्ध नहीं हो सकती है। बिना तपाये सोना शुद्ध नहीं होता। बिना अग्नि में तपाये रोटी नहीं पकती । उसी प्रकार बिना बाह्य-आभ्यन्तर तप के आत्मा पर लगा कर्म मैल छूटता नहीं है। यद्यपि सिद्ध राशि के अनन्तवें भाग तथा अभव्य राशि के अनन्तगुणें कर्म परमाणु प्रतिसमय खिरते हैं 'तप' रूप अलौकिक शक्ति के द्वारा इससे अधिक भी खिरते हैं। यह ''गजभुक्त कपित्थवत्'' (कबीट) निर्जरा कहलाती है। **जैसे**- हाथी; साबुत कबीट (कैंथ) खाता है एवं साबुत ही मल के द्वारा बाहर निकाल देता है, परन्तु उसके अन्दर का सत्त्व (गूदा) नष्ट हो जाता है। वैसे ही अविपाक निर्जरा से कर्म शीघ्र ही पककर निसत्त्व होकर खिर जाते हैं।

प्रश्नः -तप किसे कहते हैं ? संक्षेप में तप के कितने भेद हैं ?

उत्तरः- जो कर्म क्षय के लिये तपा जाता है, उसे तप कहते हैं । संक्षेप में तप दो प्रकार का है— १. बाह्य तप; २. आभ्यन्तर तप ।

प्रश्नः - बाह्य तप किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो बाहर से देखने में आता है अथवा जिसे अन्यजन भी करते

हैं, वह बाह्य तप है।

प्रश्नः - बाह्य तप के भेद बताओ ?

उत्तरः- १. अनशन; २.अवमौदर्य; ३.वृत्ति-परिसंख्यान; ४.रस-परित्याग; ५. विविक्त-शय्यासन और ६. कायक्लेश ।

प्रश्नः - आभ्यन्तर तप किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जिन तपों का आत्मा से घनिष्ट सम्बन्ध है, वे आभ्यन्तर तप कहलाते हैं।

प्रश्नः - आभ्यन्तर तप के भेद बताइये ?

उत्तरः- १. प्रायश्चित; २. विनय; ३. वैय्यावृत्त्य; ४. स्वाध्याय; ५. व्युत्सर्ग और ६. ध्यान ।

प्रश्नः - प्रायश्चित तप के भेद एवं लक्षण बताइये ?

उत्तरः- प्रायश्चित तप के नव भेद हैं— १. आलोचना; २. प्रतिक्रमण; ३. तदुभय; ४. विवेक; ५. व्युत्सर्ग; ६. तप; ७. छेद; ८. परिहार; ९. उपस्थापना आत्मा से अपराध की शुद्धि करना प्रायश्चित है।

प्रश्नः - विनय तप के भेद एवं लक्षण बताइये ?

उत्तरः- १. ज्ञान विनय; २. दर्शन विनय; ३. चारित्र विनय; ४. उपचार विनय; ये चार भेद हैं। पूज्य पुरुषों का आदर करना विनय हैं।

प्रश्नः - वैय्यावृत्त्य तप का भेद एवं लक्षण बताइये ?

उत्तरः- वैय्यावृत्त्य तप के १० भेद हैं — १. आचार्य; २. उपाध्याय; ३.तपस्वी; ४. शैक्ष्य, ५.ग्लान; ६.गण; ७.कुल; ८.संघ; ९.साधु; १०.मनोज्ञ; इन दस प्रकार के मुनियों की सेवा करना दस प्रकार की वैय्यावृत्त्य है। शरीर तथा अन्य वस्तुओं से मुनियों की सेवा करना वैय्यावृत्त्य तप है।

प्रश्नः - स्वाध्याय तप के भेद एवं लक्षण बताइये ?

उत्तरः- स्वाध्याय ५ प्रकार का है— १. वाचना; २. पृच्छना; ३. अनुप्रेक्षा; ४. आम्नाय और ५. धर्मोपदेश । ज्ञान की भावना में आलस्य नहीं

करना स्वाध्याय है।

प्रश्नः - व्युत्सर्ग तप के भेद व लक्षण बताइये ?

उत्तरः- व्युत्सर्ग तप के दो भेद- बाह्य और आभ्यन्तर। धन-धान्यादि बाह्य परिग्रहों का त्याग तथा क्रोधादि अन्तरङ्ग अशुभ भावों का त्याग। बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहों का त्याग व्युत्सर्ग तप है।

प्रश्नः -ध्यान तप के भेद एवं लक्षण बताइये ?

उत्तरः- ध्यान तप के चार भेद हैं— १. आर्त्त ध्यान; २. रौद्र ध्यान; ३. धर्म्य ध्यान और ४. शुक्ल ध्यान। चित्त की चञ्चलता को रोककर, किसी एक पदार्थ के चिन्तन में लगना ध्यान है।

प्रश्नः - साधक को कौन-सा तप करना चाहिए और क्यों ?

उत्तरः- साधक को बाह्य और अन्तरङ्ग दोनों तप करना आवश्यक है, इसके बिना मोक्ष की विधि बन नहीं सकती है । दोनों तप; एक सिक्के के दो पहलु के समान हैं, एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है । रोटी दोनों ओर से सेंकी जाती है तब शरीर को पुष्ट करती है । वैसी ही दोनों तपों को तपने वाला ही मोक्ष पा सकता है।

मोक्ष का लक्षण एवं भेद

सव्वस्स कम्मणो जो, खय हेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेओ स भाव-मुक्खो, दव्व-विमुक्खो य कम्म पुह भावो ।।३७।।

अन्वयार्थ - (जो) जो (अप्पणो) आत्मा का (परिणामो) परिणाम (सव्वस्स) समस्त (कम्मणो) कर्मों के (खय हेदू) क्षय का कारण है (स) वह (हु) निश्चय से (भाव मुक्खो) भाव मोक्ष है (य) और (कम्म पुहभावो) कर्मों का आत्मा से पृथक् होना (दव्वविमुक्खो) द्रव्य मोक्ष (णेयो) जानना चाहिए ।

अर्थ - आत्मा के जो परिणाम समस्त कर्मों के क्षय में कारण हैं, वह निश्चय से भाव मोक्ष है और कर्मों का आत्मा से पृथक् होना द्रव्य

मोक्ष जानना चाहिए ।

प्रश्नः - मोक्ष किसे कहते हैं ? इसके भेद बताइये ?

उत्तरः- समस्त कर्मों का आत्मा से अलग हो जाना मोक्ष कहलाता है। मोक्ष के दो भेद हैं— १. भाव मोक्ष; २. द्रव्य मोक्ष ।

प्रश्नः - मोक्ष किसे प्राप्त होता है ?

उत्तरः- कर्म रहित जीव को मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रश्नः - मोक्ष प्राप्त जीव कहाँ रहता है ? वहाँ से आता है या नहीं ?

उत्तरः- मोक्ष प्राप्त जीव; लोक के अग्रभाग, सिद्धालय में रहता है, वह वहाँ से फिर लौटकर कभी भी नहीं आता ।

प्रश्नः - क्या संसार के सभी जीव मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ?

उत्तरः- नहीं; भव्य जीव ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्नः - भव्य किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जिसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्त करने की योग्यता है, वह भव्य है । "भवितं योग्य भव्यः"

प्रश्नः - भव्य कितने प्रकार के होते हैं, उदाहरण सहित समझाओ ?

उत्तरः- भव्य चार प्रकार के होते हैं— आसन्न, निकट, दूर, दूरान्दूर भव्य ।

१. आसन्न भव्य - जिन जीवों का सात-आठ भवों में मोक्ष जाना निश्चित है, वे आसन्न भव्य है। **जैसे** - गर्भवती महिला जो नौ महिने के बाद नियम से सन्तान को उत्पन्न करेगी यह निश्चित है।

२. निकट भव्य - जिन जीवों का अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल के अन्दर मोक्ष जाना निश्चित है, वे निकट भव्य हैं। **जैसे** - जिनकी शादी हो चुकी है, वे निकट समय में सन्तान उत्पन्न करेगें, ऐसे वे निकट भव्य हैं।

३. दूर भव्य - जिन जीवों का मोक्ष जाना निश्चित है, लेकिन अभी मोक्ष जाने का समय निश्चित नहीं हैं, वे दूर भव्य हैं। **जैसे** - किसी

की सगाई हो गई है, लेकिन शादी का समय तय नहीं हैं, ऐसे वे दूर भव्य हैं।

४. दूरान्दूर भव्य - जिन जीवों का कभी मोक्ष जाना निश्चित नहीं है, वे दूरान्दूर भव्य है अथवा जो अभव्यों के समान भव्य हैं, वे दूरान्दूर भव्य हैं। इनका निवास स्थान नित्यनिगोद है। **जैसे** - विधवा स्त्री, जिसके पति के अभाव में सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती, ऐसे वे दूरान्दूर भव्य हैं।

पुण्य-पाप का स्वरूप एवं भेद

सुह असुह भाव जुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

अन्वयार्थ - (सुह असुह भाव जुत्ता) शुभ और अशुभ भाव से युक्त (जीवा) जीव (खुल) निश्चय से (पुण्णं) पुण्यरूप (पावं) पापरूप (हवंति) होते हैं (सादं) सातावेदनीय (सुहाउ) शुभ आयु (णामं) शुभ नाम (गोदं) उच्च गोत्र (पुण्णं) पुण्यरूप हैं (च) और (पराणि) असातावेदनीय, अशुभ नामकर्म, अशुभायु और नीच गोत्र (पावं) पापरूप हैं।

अर्थ - शुभ भाव युक्त जीव पुण्यरूप तथा अशुभ भाव युक्त जीव पापरूप होते हैं। सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम और उच्चगोत्र; ये पुण्यरूप कर्म है और दूसरे असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम और अशुभ गोत्र; पापरूप कर्म है।

प्रश्नः - पुण्य कितने प्रकार का है ?

उत्तरः- पुण्य दो प्रकार का है —— भाव पुण्य और द्रव्य पुण्य।

प्रश्नः - पाप कितने प्रकार का है ?

उत्तरः- पाप भी दो प्रकार का है—— भाव पाप और द्रव्य पाप।

प्रश्नः -भाव पुण्य और द्रव्य पुण्य का स्वरूप बताओ ?

उत्तरः- शुभ भावों को धारण करने वाले जीव; भाव पुण्य कहलाते हैं

तथा कर्मों की प्रशस्त प्रकृतियों को द्रव्य पुण्य कहते हैं ?

प्रश्नः -शुभ भाव कौन से हैं बताइये ?

उत्तरः- जीवों की रक्षा करना, सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अरिहन्तभक्ति करना, पञ्चपरमेष्ठी नमन, गुरुभक्ति, वैय्यावृत्त्य, दान, दया, मैत्री, प्रमोद आदि शुभ भाव; भाव पुण्य हैं।

प्रश्नः -अशुभ भाव कौन से हैं ?

उत्तरः- हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाँच पाप करना, देव-शास्त्र-गुरु की उपासना नहीं करना, गुरुओं की निन्दा करना, दान, दया, संयम, तपादि का पालन नहीं करना, क्रोध, मान, माया, लोभादि पाप भाव; अशुभ भाव हैं।

प्रश्नः -भाव पाप और द्रव्य पाप किसे कहते हैं ?

उत्तरः- अशुभ भावों को धारण करने वाले जीव; भाव पाप कहलाते हैं तथा कर्मों की अप्रशस्त प्रकृतियाँ द्रव्य पाप हैं।

प्रश्नः -आठ कर्मों के कितने भेद हैं ?

उत्तरः- आठ प्रकार के कर्म दो भेद वाले हैं— १.घातिया कर्म; २.अघातिया कर्म ।

प्रश्नः -घातिया कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तरः- आत्मा के अनुजीवी गुणों को घात करने वाले कर्म घातिया कहलाते हैं ?

प्रश्नः -अघातिया कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो आत्मा के अनुजीवी गुणों का घात नहीं करते हैं, वे अघातिया कर्म कहलाते हैं। अघातिया कर्मों में कुछ कर्म पुण्यरूप और कुछ कर्म पापरूप कहलाते हैं।

प्रश्नः -पाप प्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी हैं ?

उत्तरः- पाप प्रकृतियाँ १०० हैं— घातिया की ४७; असातावेदनीय १; नीचगोत्र १; नरकायु १ और नामकर्म की ५०— नरकगति,

नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, जाति में से आदि की ४ जातियाँ; संस्थान अन्त के ५; संहननअन्त के ५; स्पर्शादिक अशुभ २०; उपघात १; अप्रशस्त विहायोगति १; स्थावर १; सूक्ष्म १; अपर्याप्त १; अनादेय १; अयशःकीर्ति १; अस्थिर १; अशुभ १; दुर्भग १; दुःस्वर १ और साधारण १; कुल ऐसी सौ प्रकृतियाँ हैं।

प्रश्नः -पुण्य प्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी हैं?

उत्तरः- अड़सठ हैं - कर्मों की समस्त प्रकृतियाँ १४८ हैं, उनमें से पाप प्रकृतियाँ १०० घटाने से शेष रहीं ४८। उनमें नामकर्म की स्पर्शादि २० शुभ प्रकृतियाँ मिलाने से सम्पूर्ण पुण्य प्रकृतियाँ अड़सठ होती हैं।

प्रश्नः -क्या पुण्य छोड़ने योग्य है? यदि नहीं तो क्यों?

उत्तरः- नहीं; पुण्य कथञ्चित् ग्रहण करने योग्य है, इसको सर्वथा छोड़ना साधक का कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि पुण्य; आत्मा को पवित्र करता है। पुण्य; गौण हो सकता है, लेकिन हेय नहीं होता ।

इति द्वितीयः अध्यायः समाप्तः

तृतीयोऽध्यायः

मोक्षमार्ग का लक्षण एवं भेद

सम्मद्-दंसण णाणं, चरणं मुक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्छयदो, तत्तिय मइयो णिओ अप्पा ॥३९॥

अन्वयार्थ-(ववहारा) व्यवहार नय से (सम्मद्दंसण णाणं) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान (चरणं) सम्यक्चारित्र (मुक्खस्स) मोक्ष का (कारणं) कारण (जाणे) जानो (णिच्छयदो) निश्चय नय से (तत्तिय मइयो) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित (णिओ) अपना (अप्पा) मोक्ष का कारण जानो ।

अर्थ - व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मोक्ष का कारण जानो तथा निश्चय नय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित अपना आत्मा ही मोक्ष का कारण जानो ।

प्रश्नः - तृतीय अध्याय का वर्णित विषय बताइये ?

उत्तरः-तीसरे अध्याय में गाथा संख्या ३९ से गाथा संख्या ५८वीं के अन्त तक कुल २० गाथायें हैं। इनमें से गाथा संख्या ३९वीं में मोक्षमार्ग का लक्षण एवं भेद का कथन है, गाथा संख्या ४०वीं में आत्मा ही मोक्ष कारण क्यों है ? इसका समाधान है। गाथा संख्या ४१वीं में सम्यग्दर्शन का स्वरूप । गाथा संख्या ४२वीं में सम्यग्ज्ञान का स्वरूप । गाथा संख्या ४३वीं ४४वीं में दर्शन-ज्ञान उपयोग की उत्पत्ति के नियम । गाथा संख्या ४५वीं में व्यवहार चारित्र का स्वरूप। गाथा संख्या ४६वीं में निश्चय चारित्र का स्वरूप। गाथा संख्या ४७वीं में मोक्ष प्राप्ति के हेतुओं का कथन । गाथा संख्या ४८वीं में चित्त स्थिरता का उपाय । गाथा संख्या ४९वीं में ध्यान करने योग्य मन्त्रों का कथन; गाथा संख्या ५०, ५१, ५२, ५३, ५४वीं;

इन पाँचों गाथाओं में क्रमशः अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठियों का स्वरूप, गाथा संख्या ५५वीं में ध्यान, ध्येय का स्वरूप, गाथा संख्या ५६वीं में परम-निश्चय ध्यान का लक्षण, गाथा संख्या ५७वीं में ध्यान करने की पात्रता एवं अन्तिम गाथा संख्या ५८वीं में ग्रन्थकार का लघुता प्रदर्शन है।

प्रश्नः - मोक्ष क्या है ?

उत्तरः- आठ कर्मों से आत्मा का पूर्ण छुटकारा पाना मोक्ष है।

प्रश्नः - मोक्षमार्ग कितने प्रकार के हैं ?

उत्तरः- दो प्रकार के हैं—१. व्यवहार मोक्षमार्ग; २. निश्चय मोक्षमार्ग ।

प्रश्नः - व्यवहार मोक्षमार्ग किसे कहते हैं ?

उत्तरः- व्यवहार से सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग है।

प्रश्नः - निश्चय मोक्षमार्ग कौन-सा है ?

उत्तरः- रत्नत्रय युक्त आत्मा को निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं।

निश्चय से आत्मा ही मोक्ष का कारण है

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुइत्तु अण्ण दवियम्हि ।
तम्हा तत्तिय मइउ, होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

अन्वयार्थ - (रयणत्तयं) रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र) (अप्पाणं) आत्मा को (मुइत्तु) छोड़कर (अण्ण दवियम्हि) दूसरे द्रव्य में (ण) नहीं (वट्टई) रहता (तम्हा) इसलिए (तत्तिय मइउ) रत्नत्रय सहित (आदा) आत्मा (हु) ही (मुक्खस) मोक्ष का (कारणं) कारण (होदि) होती है।

अर्थ - रत्नत्रय; आत्मा को छोड़कर दूसरे द्रव्यों में नहीं रहता है, इसलिए रत्नत्रय सहित आत्मा ही मोक्ष का कारण होता है।

प्रश्नः - निश्चय नय से रत्नत्रय युक्त आत्मा ही मोक्ष का कारण क्यों है ?

उत्तरः- क्योंकि रत्नत्रय; आत्मा अर्थात् जीव द्रव्य को छोड़कर अन्य द्रव्यों में नहीं पाया जाता है।

प्रश्नः - वे रत्नत्रय कौन-से हैं ?

उत्तरः- १. सम्यग्दर्शन; २. सम्यग्ज्ञान; ३. सम्यक्चारित्र ।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं रूव-मप्पणो तं तु ।
दुरभि णिवेस विमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥४१॥

अन्वयार्थ - (जीवादी सद्दहणं) जीवादि का सच्चा श्रद्धान करना (सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन है (तं) वह (अप्पणो) आत्मा का (रूवं) स्वरूप है (तु) और (जम्हि) जिस सम्यग्दर्शन के (सदि) होने पर (दुरभिणि-वेसविमुक्कं) संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित (णाणं) ज्ञान (खु) नियम से (सम्मं) सम्यग्ज्ञान (होदि) होता है।

अर्थ - जीवादि सात तत्त्वार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह सम्यक्दर्शन आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। इस सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान; सम्यग्ज्ञान कहलाता है और वह ज्ञान; संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय से रहित होता है।

प्रश्नः -सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष; इन सातों तत्त्वों का पदार्थ सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

प्रश्नः - आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है ?

उत्तरः- सम्यग्दर्शन ।

प्रश्नः -ज्ञान में समीचीनता कब आती है ?

उत्तरः- सम्यग्दर्शन के होने पर ज्ञान; समीचीन या सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

प्रश्नः -संशय किसे कहते हैं ?

उत्तरः- विरुद्ध नाना प्रकार के स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय कहते

हैं। इसके होने पर पदार्थ का निश्चय नहीं हो पाता, क्योंकि इसके होने पर बुद्धि सो जाती है— समीचीनतया बुद्धिः शेते यस्मिन् सः संशयः । **जैसे**-यह सीप है या चाँदी ।

प्रश्नः -विपर्यय किसे कहते हैं ?

उत्तरः- विपरीत; एक प्रकार (अंश) को स्पर्श करने वाला ज्ञान; विपर्यय कहलाता है। **जैसे** - सीप को चाँदी समझ लेना ।

प्रश्नः - संशय और विपर्यय में क्या अन्तर है ?

उत्तरः- संशय में सीप है या चाँदी ? ऐसा संशय बना रहता है, निर्णय नहीं हो पाता, परन्तु विपर्यय में एक कोटि (प्रकार) का निश्चय होता है। **जैसे** - सीप को सीप न समझकर चाँदी समझ लेना ।

प्रश्नः - अनध्यवसाय किसे कहते हैं ?

उत्तरः- अध्यवसाय का अर्थ है, निश्चय और इसका न होना अनध्यवसाय कहलाता है। **जैसे**- रास्ते में चलते समय पैरों के नीचे अनेक चीजें आती हैं पर उनमें से निश्चय किसी एक का भी नहीं हो पाता है, यही ज्ञान; अनध्यवसाय कहलाता है।

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप एवं भेद

संसय विमोह विब्भम, विवज्जियं अप्प-पर सरूवस्स।
गहणं सम्मण्णाणं, सायार-मणेय-भेयं तु ॥४२॥

अन्वयार्थ - (संसय-विमोह-विब्भम-विवज्जियं) संशय, अनध्यवसाय, विपर्यय रहित (सायारं) आकार सहित (अप्प-पर-सरूवस्स) अपने व दूसरे के स्वरूप का (गहणं) ग्रहण करना अर्थात् जानना (सम्मण्णाणं) सम्यग्ज्ञान है (तु) और (अणेय भेयं) वह अनेक प्रकार का है।

अर्थ - संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित व आकार सहित अपने और पर के स्वरूप का जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है और यह सम्यग्ज्ञान अनेक प्रकार का है।

प्रश्नः - सम्यग्ज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तरः - पाँच भेद है —— १. मतिज्ञान; २. श्रुतज्ञान; ३. अवधिज्ञान; ४. मनःपर्ययज्ञान और ५. केवलज्ञान।

प्रश्नः - सम्यग्ज्ञान के अनेक भेद क्यों कहे?

उत्तरः - यद्यपि सम्यग्ज्ञान के मूल में पाँच ही भेद हैं, परन्तु पाँचों में केवलज्ञान को छोड़कर अन्य चार ज्ञानों के अनेक भेद हैं, इसलिए सम्यग्ज्ञान के ग्रन्थकार ने 'अणेयभेयं' अनेक भेद कहे हैं। **जैसे**- मतिज्ञान के ३३६ भेद, श्रुतज्ञान के मुख्य अङ्गबाह्य, अङ्गप्रविष्ट। अङ्गबाह्य के अनेक एवं अङ्ग प्रविष्ट के बारह भेद हैं। अवधि ज्ञान के गुणप्रत्यय एवं भव प्रत्यय; दो भेद हैं। गुणप्रत्यय अवधि ज्ञान के अनुगामी आदि छह भेद हैं। मनःपर्ययज्ञान के ऋजुमति एवं विपुलमति ज्ञान; ये दो भेद हैं एवं केवलज्ञान एक अखण्ड ज्ञान है।

दर्शनोपयोग का लक्षण

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टु-मायारं ।
अविसेसि-दूण अट्ठे, दंसण-मिदि भण्णए समए ॥४३॥

अन्वयार्थ - (अट्ठे) पदार्थ के विषय में (अविसेसि-दूण) विशेष अंश को ग्रहण किए बिना (आयारं) आकार को (णेव) नहीं (कट्टु) करके (भावाणं) पदार्थों का (जं) जो (सामण्णं) सामान्य (गहणं) ग्रहण करना अर्थात् जानना (समए) शास्त्र में (दंसणं) दर्शन (इदि) इस प्रकार (भण्णए) कहा जाता है।

अर्थ - पदार्थ के विषय में पदार्थों का विशेष अंश ग्रहण नहीं करके, पदार्थों का जो सामान्य ग्रहण अर्थात् जानना है, उसे आगम में दर्शन कहा जाता है।

प्रश्नः - किसी भी पदार्थ में कितने अंश पाये जाते हैं?

उत्तरः - किसी भी पदार्थ में दो अंश पाए जाते हैं —— १. सामान्य अंश;

२. विशेष अंश ।

प्रश्नः - सामान्य अंश को ग्रहण करने वाला क्या कहा जाता है ?

उत्तरः - सामान्य अंश का जानना दर्शन कहलाता है। इसमें पदार्थ के आकार का ज्ञान नहीं होता है, केवल सत्ता का भान होता है। **जैसे** - सामने कोई पदार्थ आने पर सबसे पहले यह कोई पदार्थ है, इतना मात्र जानना 'दर्शन' है।

प्रश्नः - विशेष अंश का ग्राहक किसे कहते हैं ?

उत्तरः - सामान्य अंश के ग्रहण के बाद; विशेष अंश का ग्राहक या जानने वाला 'ज्ञान' कहलाता है। **जैसे** - सामने कोई पदार्थ आने पर पदार्थ मात्र ग्रहण करने वाला तो दर्शन है, परन्तु वह पदार्थ; काला है, पीला है या लाल है आदिरूप विकल्प सहित ज्ञान होता 'ज्ञान' कहलाता है।

दर्शन-ज्ञानोपयोग के नियम

दंसण पुव्वं णाणं, छद्मत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा ।
जुगवं जम्हा केवलि-णाहे जुगवं तु ते दोवि ॥४४॥

अन्वयार्थ - (छद्मत्थाणं) अल्पज्ञानियों के (दंसण पुव्वं) दर्शनपूर्वक (णाणं) ज्ञान होता है (जम्हा) क्योंकि (दोण्णि) दोनों (उवउग्गा) उपयोग (जुगवं) एक साथ (ण) नहीं होते हैं (तु) किन्तु (केवलि णाहे) केवलज्ञानी के (ते) वे (दोवि) दोनों ही (जुगवं) एक साथ होते हैं।

अर्थ - अल्पज्ञानियों के दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है, क्योंकि उनके दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं, किन्तु केवलज्ञानी के वे दोनों ही उपयोग एक साथ होते हैं।

प्रश्नः - दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तरः - पदार्थ के सामान्य अंश को जानना दर्शन है।

प्रश्नः - ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तरः- पदार्थ के विशेष अंश को जानना ज्ञान है।

प्रश्नः -छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) किसे कहते हैं ?

उत्तरः- संक्षेप में पाँच ज्ञान होते हैं— मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान । इन पाँच ज्ञानों में से प्रारम्भ के चार ज्ञान वाले छद्मस्थ (अल्पज्ञ) कहलाते हैं।

प्रश्नः - केवली किसे कहते हैं एवं कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तरः- जिन्हें केवलज्ञान हो जाता है, वे सर्वज्ञ या केवली कहलाते हैं। ये छह प्रकार के होते हैं — १. तीर्थङ्कर केवली; २. सामान्य केवली; ३. समुद्घात केवली; ४. उपसर्ग केवली; ५. मूक केवली; ६. अन्तःकृत केवली।

प्रश्नः -छद्मस्थ जीव के उपयोग का क्रम बताइये ?

उत्तरः- छद्मस्थ जीव; पहले देखते हैं और फिर बाद में जानते हैं, किसी पदार्थ को देखे बिना छद्मस्थ उसे जान ही नहीं सकते, इसलिए छद्मस्थों के पहले दर्शनोपयोग होता है और बाद में ज्ञानोपयोग होता है।

प्रश्नः -केवलज्ञानी के उपयोग का क्रम बताइये ?

उत्तरः- केवलज्ञानी किसी भी पदार्थ को एक ही साथ देखते और जानते हैं, इसलिए उनका दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग एक साथ होता है।

प्रश्नः -केवलज्ञानी किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत् जानते हैं, वे केवलज्ञानी कहलाते हैं।

व्यवहार चारित्र का स्वरूप एवं भेद

असुहादो विणिवित्ती, सुहे-पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वद समिदि गुत्ति-रूवं, ववहार-णया दु जिण भणियं ।।४५।।

अन्वयार्थ - (ववहार णया) व्यवहार नय से (असुहादो) अशुभ कार्य से

(विणिवित्ती) निर्वृत्ति (य) और (सुहे) शुभ कार्य में (पवित्ती) प्रवृत्ति (जिण भणियं) जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ (चारित्तं) चारित्र (जाण) जानो (दु) और वह चारित्र (वद-समिदि-गुत्तिरूवं) व्रत, समिति, गुप्तिरूप है।

अर्थ - अशुभ कार्यों को छोड़ना और शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना; जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा हुआ व्यवहार चारित्र जानो और वह चारित्र; पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तिरूप से १३ प्रकार का है।

प्रश्नः -व्यवहार चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तरः- अशुभ कार्यों —— हिंसा, झूठ, चोरी कुशील और परिग्रह; इन पापों का त्याग करना, अयत्नाचार पूर्वक चलना, बोलना, बैठना, खाना आदि न करना तथा अशुभ मन -वचन और काय को वश में करना तथा शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना व्यवहार चारित्र है।

निश्चय चारित्र का स्वरूप

बहि-रब्भंतर किरिया, रोहो भव कारणप्-पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्म चारित्तं ॥४६॥

अन्वयार्थ - (भव-कारणप्पणासट्ठं) संसार के कारणों को नष्ट करने के लिए (णाणिस्स) ज्ञानी पुरुष का (जं) जो (बहि-रब्भंतर-किरियारोहो) बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाओं का रोकना (तं) वह (जिणुत्तं) जिनेन्द्र देव द्वारा कहा हुआ (परमं) उत्कृष्ट-निश्चय (सम्मचारित्तं) सम्यक्चारित्र है।

अर्थ - संसार के कारणों को नष्ट करने के लिए; ज्ञानी पुरुषों के द्वारा बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं को रोकना निश्चय सम्यक् चारित्र, ऐसा जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ है।

प्रश्नः - संसार किसे कहते हैं ?

उत्तरः- 'संसृति इति संसारः' जहाँ जीव चारों गतियों में घूमता है, वह

संसार है।

प्रश्नः - संसार का कारण क्या है ?

उत्तरः- बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाएँ संसार की कारण हैं।

प्रश्नः -बाह्य क्रिया कौन-सी हैं ?

उत्तरः- कायिक और वाचनिक क्रियाएँ — हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह आदि बाह्य क्रियाएँ हैं।

प्रश्नः - आभ्यन्तर क्रियाएँ कौन-सी हैं ?

उत्तरः- मानसिक, भीतरी, क्रियाओं को आभ्यन्तर क्रिया कहते हैं। **जैसे** - क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि। मानसिक शुभ-अशुभ विचारों का द्वन्द्व आदि सब आभ्यन्तर क्रियाएँ हैं।

प्रश्नः - बाह्य-आभ्यन्तर क्रिया कौन रोकता है ?

उत्तरः- 'णाणी'- ज्ञानी पुरुष अपनी मानसिक, वाचनिक व कायिक आभ्यन्तर और बाह्य क्रियाओं को रोकते हैं।

प्रश्नः - बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं के निरोध से ज्ञानी को किसकी प्राप्ति होती है ?

उत्तरः- निश्चय चारित्र की।

प्रश्नः -निश्चय चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तरः- बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं के निरोध से प्रादुर्भूत आत्मा की शुद्धि को निश्चय सम्यक् चारित्र कहते हैं।

मोक्ष प्राप्ति के हेतु ध्यान की प्रेरणा

दुविहं पि मुक्ख हेउं, ज्झाणे पाऊणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्त चित्ता, जूयं ज्झाणं समब्भसह ॥४७॥

अन्वयार्थ - (जं) क्योंकि (मुणी) मुनिजन (दुविहंपि) दोनों ही प्रकार के (मुक्ख हेउं) मोक्ष के कारणों को (णियमा) नियम से (ज्झाणे) ध्यान में (पाऊणदि) पा लेते हैं (तम्हा) इसलिए (जूयं) तुम सब (पयत्त चित्ता) सावधान होकर (ज्झाणं) ध्यान का (समब्भसह)

अभ्यास करो ।

अर्थ - क्योंकि मुनिराज दोनों ही प्रकार के कारणों को नियम से ध्यान में पा लेते हैं, इसलिए तुम सब सावधान होकर ध्यान का अभ्यास करो ।

चित्त स्थिर करने का उपाय

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दूसह इट्ठ-णिट्ठ अट्ठेसु ।
थिर-मिच्छह जइ चित्तं, विचित्त ज्झाणप्-पसिद्धीए ।।४८।।

अन्वयार्थ - (विचित्त ज्झाणप्पसिद्धीए) अनेक प्रकार के ध्यान की सिद्धि के लिए (जइ) यदि (चित्तं) चित्त को (थिरं) स्थिर करना (इच्छह) चाहते हो तो (इट्ठ णिट्ठ अट्ठेसु) इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में (मा मुज्झह) मोह मत करो (मा रज्जह) राग मत करो (मा दूसह) द्वेष मत करो ।

अर्थ - अनेक प्रकार के ध्यान की सिद्धि के लिए यदि चित्त को स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट पदार्थों में मोह मत करो, राग मत करो और अनिष्ट पदार्थों में द्वेष मत करो ।

प्रश्नः - ध्यान की सिद्धि के लिए आवश्यक सामग्री क्या है ?

उत्तरः- चित्त (मन) की एकाग्रता ।

प्रश्नः - चित्त की एकाग्रता के लिए आवश्यक सामग्री क्या है ?

उत्तरः- प्रिय पदार्थों में मोह मत करो, राग मत करो और अप्रिय पदार्थों में द्वेष मत करो ।

प्रश्नः - मोह किसे कहते हैं ?

उत्तरः- पर-वस्तु को अपना मानना व अपने को भूल जाना मोह कहलाता है।

प्रश्नः - राग किसे कहते हैं ?

उत्तरः- इष्ट वस्तु में प्रीति को राग कहते हैं।

प्रश्नः - द्वेष किसे कहते हैं ?

उत्तरः- अनिष्ट वस्तु में अप्रीति को द्वेष कहते हैं।

प्रश्नः - ध्यान के अनेक प्रकार कौन-से हैं?

उत्तरः- १. पिण्डस्थ; २. पदस्थ; ३. रूपस्थ; ४. रूपातीत।

पिण्डस्थ-'पिण्डस्थं स्वात्म चिन्तनं'-अर्थात् शरीर में स्थित आत्मा का चिन्तन करना।

पदस्थ-'मन्त्र वाक्यों' के चिन्तन को पदस्थ ध्यान कहते हैं।

रूपस्थ-शुद्धचिद्रूप अरिहन्तों का ध्यान।

रूपातीत-'रूपातीतं निरञ्जनम्' सिद्धपरमेष्ठी का ध्यान करना।

प्रश्नः -ध्यान की आवश्यकता क्यों है?

उत्तरः- क्योंकि मोक्षमार्ग की सिद्धि; बिना ध्यान के नहीं हो सकती है।

जपने तथा ध्यान करने योग्य मन्त्र

पणतीस सोल छप्-पण, चदु दुग-मेगं च जवह ज्झाएह।
परमेट्ठि वाचयाणं, अण्णं च गुरूव-एसेण ॥४९॥

अन्वयार्थ - (परमेट्ठि वाचयाणं) परमेष्ठी वाचक (पणतीस) पैंतीस (सोल) सोलह (छप्) छह (पण) पाँच (चदु) चार (दुग) दो (च) और (एगं) एक अक्षर के मन्त्र का (जवह) जप करो (ज्झाएह) ध्यान करो (च) और (अण्णं) अन्य मन्त्रों को (गुरूवएसेण) गुरु के उपदेश से जपो और ध्यान करो।

अर्थ - परमेष्ठी वाचक; पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक अक्षर के मन्त्र का जाप करो, ध्यान करो ओर मन्त्रों को गुरु के उपदेश से जपो व ध्यान करो।

प्रश्नः -परमेष्ठी किसे कहते हैं?

उत्तरः-जो परम पद में स्थित हैं, वे परमेष्ठी कहलाते हैं।

प्रश्नः - परमेष्ठी वाचक पैंतीस अक्षरों का मन्त्र कौन-सा है?

उत्तरः- णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

इसे णमोकार मन्त्र, अनादिनिधन मन्त्र, मङ्गलमन्त्र आदि अनेक नामों से कहा जाता है।

प्रश्नः - णमोकार मन्त्र के अनेक नाम कौन-से हो सकते हैं ?

उत्तरः- १. णमोकार मन्त्र, २. नमस्कार मन्त्र,
३. मङ्गल मन्त्र, ४. परमेष्ठी वाचक मन्त्र,
५. अनादिनिधन मन्त्र, ६. चौरासी लाख मन्त्रों का राजा,
७. तरण - तारण मन्त्र, ८. महामन्त्र,
९. अपराजित मन्त्र, १०. मूल मन्त्र,
११. मन्त्रराज, १२. सर्वमान्य मन्त्र,
१३. नवकार मन्त्र, १४. सार्वकालिक मन्त्र,
१५. सार्वभौमिक मन्त्र, १६. सर्वसिद्धि मन्त्र ।

प्रश्नः - सोलह, छह, पाँच, चार-दो एवं एक अक्षर वाले पञ्च परमेष्ठी वाचक मन्त्र कौन-से हैं ?

उत्तरः- सोलह अक्षर का मन्त्रः- अरिहन्त-सिद्ध-आचार्यो-पाध्याय-सर्व साधुभ्यो नमों नमः ।

छह अक्षर का मन्त्र - अरिहन्त-सिद्ध-नमों नमः ।
पाँच अक्षर का मन्त्र - अ-सि-आ-उ-सा नमः ।
चार अक्षर का मन्त्र - अरिहन्त नमः ।
दो अक्षर का मन्त्र - सिद्ध नमः ।
एक अक्षर का मन्त्र - ॐ नमः ।

प्रश्नः - ओम् को परमेष्ठी वाचक माना है, इसकी सिद्धि कीजिए ?

उत्तरः- अरिहन्त, अशरीरी अर्थात् सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, मुनि (साधु); ये पाँच परमेष्ठी हैं। इनके पहले-पहले अक्षरों के मिलाने से 'ओम्' की सिद्धि होती है।

अरिहन्त का पहला अक्षर 'अ'
अशरीरी (सिद्ध) का पहला अक्षर 'अ', अ + अ = आ

आचार्य का पहला अक्षर 'आ', आ+आ = आ
उपाध्याय का पहला अक्षर 'उ', आ+उ = ओ
मुनि का पहला अक्षर म्, ओ+म् = ओम् शब्द बनता है।
अ+अ+आ, इन समान अवर्णों के मिलाने के लिए संस्कृत की कातन्त्र व्याकरण में **समानः सवर्णों दीर्घी भवति; सूत्र संख्या २४ है।** सूत्रानुसार दीर्घ 'आ' बन जाता है। आ+उ दोनों के मिलाने के लिए **उवर्णे ओ; सूत्र संख्या ३०** लगने से आ और उ मिलकर ओ बनता है। ओ के साथ म् मिलाने से 'ओम्' शब्द बन जाता है।

प्रश्नः - ओम् की मान्यता ?

उत्तरः- ओम् यह सर्वमान्य मन्त्र है। यह जैन व जैनेतर सभी सम्प्रदायों में पूज्य माना गया है।
जैन लोगः- ओम् को परमेष्ठी वाचक मानते हैं।
जैनेतर लोगः- अ+उ+म्-तीनों मिलाकर ओम् मानते हैं तथा उनके अनुसार 'अ' विष्णुवाचक है। 'उ' महेश्वर वाचक है और 'म्' ब्रह्म का वाचक है।

प्रश्नः - 'ओम्' ओ३म् और 'ओं' में से शुद्ध कौन-सा है ?

उत्तरः- तीनों (ओम्, ओ३म्, ओं) शुद्ध हैं। तीनों की व्याकरण से सिद्धि होती है। मोऽनुस्वारः कातन्त्र के सूत्र संख्या ९१ से ओम् के म् का अनुस्वार होने पर ओं हो जाता है। 'ओ३म्' कातन्त्र व्याकरण के अनुसार निपात से सिद्ध है।

प्रश्नः - णमोकार मन्त्र जपते समय मन को स्थिर रखने का उपाय बताइये ?

उत्तरः- णमोकार मन्त्र जाप्य के लिए आचार्यों ने मुख्य तीन विधियाँ बताई हैं - इनसे मन स्थिर हो जाता है — (१) पूर्वानुपूर्वी विधि, (२) पश्चातानुपूर्वी विधि, (३) यथातथानुपूर्वी विधि। वैसे यह

मन्त्र १८४३२ प्रकार से बोला जा सकता है।

पूर्वानुपूर्वी विधि-णमोकार मन्त्र जैसा है, उसी रूप से पढ़ना ।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

इस विधि को प्रायः आदत होने से मन चञ्चलता से इधर-उधर दौड़ लगाता है, अतः दूसरी विधि उपयोगी देखिए ।

पश्चातानुपूर्वी-उल्टा, पीछे से पढ़िए ।

णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो उवज्झायाणं,
णमो आइरियाणं, णमो सिद्धाणं, णमो अरिहंताणं ॥

यथातथानुपूर्वी-ऊपर से, नीचे से, मध्य से कहीं से भी पढ़िए । बस शर्त यही है कि पाँच पद से अधिक न हों व कम भी न हों।

जैसे - णमो अरिहंताणं, णमो उवज्झायाणं, णमो सिद्धाणं,
णमो आइरियाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।

१	२	३	४	५
२	३	४	५	१
३	५	२	१	४
४	१	५	२	३
५	४	१	३	२

क्रम से, आगे-पीछे दूसरा पद फिर तीसरा पद आदि क्रम से पढ़ने पर मन एकदम स्थिर हो जाता है।

प्रश्नः - जाप्य को इस प्रकार आगे-पीछे बोलने में कोई क्या दोष नहीं लगता ?

उत्तरः- नहीं; जैसे लड्डू को किधर से भी खाइये, मीठा-ही-मीठा है। उसी प्रकार णमोकार मन्त्र का (३५ अक्षर मन्त्र) जाप कैसे से

भी जपिए, आनन्द और शान्ति का ही प्रदाता है।

प्रश्नः - ध्यान की सिद्धि के लिए जाप्य की विधि बताइये ?

उत्तरः - जाप्य तीन प्रकार से किया जाता है — १.वाचनिक; २.मानसिक; ३.उपांशु जाप्य ।

वाचनिक- वचन से बोलकर जप करना ।

मानसिक- मन-मन में उच्चारण करना ।

उपांशु- ओठों को हिलाते हुए मन्द-मन्द स्वर में जाप करना ।

इनमें मानसिक जाप उत्तम है, उसका फल भी उत्तम है। 'उपांशु' जाप मध्यम है तथा वाचनिक जाप जघन्य है।

प्रश्नः - एक ही जप को १०८ बार बोलते-बोलते भी मन स्थिर नहीं रहता है, उसे रोकने का क्या उपाय है ?

उत्तरः - एक माला में एक ही मन्त्र का उच्चारण करना आवश्यक नहीं है। स्थिरता के लिए एक ही माला में भिन्न-भिन्न जाप भी कर सकते हैं, जिससे चञ्चल मन रुक जाता है। **जैसे** - ओम् नमः। ओ३म् ह्रीँ नमः। ओ३म् अ सि आ उ सा नमः। ओ३म् अर्हद्भ्यो नमः । सिद्धेभ्यो नमः। सूरिभ्यो नमः । पाठकेभ्यो नमः । साधुभ्यो नमः आदिरूप से चौबीस तीर्थङ्कर, दस धर्म, रत्नत्रय, सोलहकारण भावना, पूज्य परमेष्ठियों के वाचक नाम आदि के आधार से भिन्न-भिन्न जाप करें। उस समय अन्दर में विचार करें, एक बार जिस जाप को जप लिया है पुनः नहीं जपूँगा । नये-नये मन्त्रों की खोज में मन केन्द्रित हो जायेगा । ध्यान की साधना में सफलता प्राप्त होगी ।

अरिहन्त परमेष्ठी का लक्षण

णट्ठ चदु घाइ कम्मो, दंसण सुह णाण वीरिय मईओ ।
सुह देहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

अन्वयार्थ - (णट्ठ चदु घाइ कम्मो) जिनने चार घातिया कर्म नष्ट कर दिये

हैं (दंसण सुह णाण वीरिय मईओ) जो दर्शन, सुख, ज्ञान तथा वीर्यमय है (सुह देहत्थो) शुभ देह में स्थित हैं (सुद्धो) वह शुद्ध (अप्पा) आत्मा (अरिहो) अरिहन्त है (विचिंतिज्जो) वह ध्यान करने योग्य है।

अर्थ - जिसने चार घातिया कर्म नष्ट कर दिए हैं। जो दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य से सहित हैं, शुभदेह में स्थित हैं, वे शुद्ध आत्मा; अरिहन्त हैं और ध्यान करने योग्य हैं।

प्रश्नः - नित्य ध्यान करने योग्य कौन हैं?

उत्तरः- 'अरिहन्त'।

प्रश्नः - अरिहन्त किन्हें कहते हैं?

उत्तरः- जिनने चार घातिया कर्म नष्ट कर दिये हैं तथा जो अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य से युक्त है, उन्हें अरिहन्त करते हैं।

प्रश्नः - घातिया कर्म किसे कहते हैं, वे चार कौन-से हैं?

उत्तरः- जो जीव के अनुजीवी गुणों का घात करते हैं, वे घातिया कर्म कहलाते हैं। वे चार हैं— १. ज्ञानावरण; २. दर्शनावरण; ३. मोहनीय; ४. अन्तराय।

प्रश्नः - अनुजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तरः- भावस्वरूप गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्नः - अनन्त चतुष्टय कौन-से हैं?

उत्तरः- अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य; ये चार अनन्त-चतुष्टय कहलाते हैं।

प्रश्नः - किस कर्म के नाश से कौन-सा गुण प्रगट होता है?

उत्तरः- ज्ञानावरण कर्म के क्षय से अनन्तज्ञान।

दर्शनावरण ,, ,, अनन्तदर्शन।

मोहनीय ,, ,, अनन्तसुख।

अन्तराय ,, ,, अनन्तवीर्य प्रकट होता है।

प्रश्नः - अरिहन्त जिस शुभ देह में स्थित रहते हैं, उसका नाम बताइये ?

उत्तरः- निगोद जीवों से रहित परमौदारिक शरीर को शुभ देह कहते हैं। अरिहन्त भगवान का यही शरीर होता है।

प्रश्नः -परमौदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जिस शरीर में से शरीराश्रित अनन्त निगादिया जीव पूर्णरूपेण निकल जाते हैं, जो स्फटिक के समान शुद्ध स्वच्छ होता है, वह शरीर परमौदारिक शरीर कहलाता है।

प्रश्नः -अरिहन्तों के साथ शुद्ध विशेषण क्यों दिया ?

उत्तरः- अठारह दोषों से रहित होने से वे शुद्ध आत्मा हैं, इसलिए शुद्ध विशेषण दिया है।

सिद्धों का लक्षण

णट्-ठट्ठ कम्म देहो, लोया-लोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो ज्झाएह लोह सिहरत्थो ।। ५१।।

अन्वयार्थ - (णट्ठट्ठ कम्म देहो) आठ कर्म और पाँच शरीर रहित (लोया-लोयस्स) लोक और अलोक का (जाणओ) ज्ञाता (दट्ठा) और दृष्ट्रा (पुरिसायारो) पुरुषाकार (लोय सिहरत्थो) लोक के शिखर पर स्थित (अप्पा) आत्मा (सिद्धो) सिद्ध परमेष्ठी है (ज्झाएह) तुम सभी उनका ध्यान करो ।

अर्थ - आठ कर्मों तथा पाँच शरीरों से रहित, लोक-अलोक को जानने व देखने वाले, पुरुषाकार से लोक के शिखर पर स्थित आत्मा; सिद्ध परमात्मा है, उनका ध्यान करो ।

प्रश्नः -ध्यान के लिए योग्य कौन हैं ?

उत्तरः- सिद्ध परमात्मा ध्यान के योग्य हैं।

प्रश्नः - सिद्ध परमात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तरः- जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र

और अन्तराय; इन आठ कर्मों से रहित हैं, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्मण शरीर से रहित हैं, जो लोक-अलोक को जानने वाले हैं, वे सिद्ध परमेष्ठी हैं।

प्रश्नः - सिद्ध परमेष्ठी कहाँ रहते हैं ?

उत्तरः- लोक के अग्रभाग में रहते हैं।

प्रश्नः - लोक के अग्रभाग को क्या कहते हैं ?

उत्तरः- 'सिद्धालय' ।

प्रश्नः - सिद्धालय में सिद्धों का आकार बताइये ?

उत्तरः- सिद्ध परमेष्ठी का आकार पुरुषाकार है। वे लोकाग्र में अपने अन्तिम शरीर से कञ्चित् न्यून आकार के रूप में रहते हैं।

प्रश्नः -सिद्ध परमेष्ठी की प्रतिमा कैसी होती है ?

उत्तरः- सिद्ध परमेष्ठी की प्रतिमा; अष्टप्रातिहार्य रहित तथा चिन्ह रहित होती है।

प्रश्नः - अरिहन्त परमेष्ठी की प्रतिमा कैसी होती हैं ?

उत्तरः- नासाग्र दृष्टि, वीतराग मुद्रा, अष्टप्रातिहार्य, यक्ष-यक्षिणी और चिन्हादि परिकर सहित प्रतिमा; अरिहन्त परमेष्ठी की होती है।

प्रश्नः - सिद्धालय में अनन्त सिद्ध एक साथ कैसे रहते हैं ? क्या वे एक दूसरे से बाधित नहीं होते हैं ?

उत्तरः- यद्यपि सिद्धक्षेत्र ४५ लाख योजन का है फिर भी वहाँ अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी रहते हैं। यह 'अवगाहन' गुण की विशेषता है। शुद्ध आत्मा अमूर्तिक है, अतः सभी सिद्ध अमूर्तिक होने से परस्पर बाधा को प्राप्त नहीं होते हैं।

आचार्य का लक्षण

दंसण णाण पहाणे, वीरिय चारित्त वर-तवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आइरिओ मुणी ज्झेओ ॥५२॥

अन्वयार्थ - (जो) जो (मुणी) मुनि (दंसण णाण पहाणे) दर्शन और ज्ञान

की प्रधानता सहित (वीरिय चारित्त वर तवायारे) वीर्य, चारित्र तथा श्रेष्ठ तपाचार में (अप्पं) अपने को (च) और (परं) दूसरों को (जुंजइ) लगाते हैं (सो) वे (आइरिओ) आचार्य (ज्झेओ) ध्यान करने योग्य हैं।

अर्थ - जो दर्शन, ज्ञान की प्रधानता से युक्त हैं। वीर्य, चारित्र तथा श्रेष्ठ तप में अपने को तथा शिष्यों को लगाते हैं, वे आचार्य; ध्यान करने योग्य है।

प्रश्नः - आचार्य परमेष्ठी किन्हें कहते हैं?

उत्तरः- जो पञ्चाचार का स्वयं पालन करते हैं तथा शिष्यों से भी पालन कराते हैं, वे आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं।

प्रश्नः - पञ्चाचार के नाम व लक्षण बताइये?

उत्तरः- पञ्चाचार - १. दर्शनाचार; २. ज्ञानाचार; ३. चारित्राचार; ४. तपाचार; ५. वीर्याचार ।

दर्शनाचार - निर्दोष सम्यग्दर्शन का पालन करना दर्शनाचार है।

ज्ञानाचार - अष्टाङ्ग सहित सम्यग्ज्ञान की आराधना करना ज्ञानाचार है।

चारित्राचार - तेरह प्रकार के चारित्र का निर्दोषरूप से आचरण करना ।

तपाचार - बारह प्रकार के तपों का निर्दोष रीति से पालन करना ।

वीर्याचार - अपनी शक्ति नहीं छिपाते हुए उत्साहपूर्वक संयम की आराधना करना वीर्याचार है।

प्रश्नः - आचार्य परमेष्ठी का उपकार बताइये?

उत्तरः- भव्य जीवों को जिनधर्म की दीक्षा देकर मोक्षमार्ग में लगाना, हित की शिक्षा देना, शिष्यों का संग्रह-निग्रह आदि आचार्य परमेष्ठी के उपकार हैं।

उपाध्याय का लक्षण

जो रयणत्तय जुत्तो, णिच्चं धम्मोव-देसणे णिरदो ।
सो उवज्झाओ अप्पा, जदिवर-वसहो णमो तस्स ।।५३।।

अन्वयार्थ - (रयणत्तय जुत्तो) रत्नत्रय से युक्त (जो) जो (अप्पा) आत्मा (णिच्चं) नित्य (धम्मोव देसणे) धर्मोपदेश देने में (णिरदो) तत्पर हैं (जदिवर-वसहो) यतियों में श्रेष्ठ (सो) वह (उवज्झाओ) उपाध्याय परमेष्ठी हैं (तस्स) उनको (णमो) नमस्कार हो ।

अर्थ - रत्नत्रय से युक्त, जो आत्मा नित्य धर्मोपदेश देने में तत्पर हैं, मुनियों में श्रेष्ठ; वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं, उनको नमस्कार हो ।

प्रश्नः -मुनियों में श्रेष्ठ कौन हैं ?

उत्तरः- 'उपाध्याय परमेष्ठी' ।

प्रश्नः -'उपाध्याय परमेष्ठी' कौन कहलाते हैं ?

उत्तरः- जो रत्नत्रय से युक्त हैं, नित्य धर्मोपदेश देने में तत्पर हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं।

प्रश्नः -उपाध्याय परमेष्ठी के उपकार बताइये ?

उत्तरः- भव्य जीवों को सत्य मार्ग का उपदेश देना तथा शिष्यों को पाठन कराना उनका महान् उपकार हैं।

साधु का लक्षण

दंसण णाण समग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्च सुद्धं, साहू स मुणी णमो तस्स ।।५४।।

अन्वयार्थ-(जो) जो (मुणी) मुनि (हु) निश्चय से (दंसण-णाण-समग्गं) दर्शन और ज्ञान से परिपूर्ण (मोक्खस्स) मोक्ष के (मग्गं) मार्गभूत (चारित्तं) चारित्र को (णिच्चं सुद्धं) हमेशा शुद्ध रीति से (साधयदि) सिद्ध करते हैं (स) वह (साहू) साधु परमेष्ठी हैं (तस्स) उन्हें (णमो) नमस्कार हो ।

अर्थ - जो मुनि; निश्चय से दर्शन और ज्ञान से परिपूर्ण हैं, मोक्षमार्ग में

कारणभूत चारित्र को नित्य शुद्ध रीति से सिद्ध करते हैं, वे साधु परमेष्ठी कहलाते हैं, उन्हें हमारा नमस्कार हो।

प्रश्नः -मोक्षमार्ग कौन-सा है?

उत्तरः- निश्चय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है।

प्रश्नः -साधु कौन कहलाते हैं?

उत्तरः- जो रत्नत्रय की साधना शुद्ध रीति से करते हैं, वे साधु परमेष्ठी कहलाते हैं।

साधु; ध्यान का साधक

जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीह वित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं, तदाहु तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं ॥५५॥

अन्वयार्थ - (जदा) जिस समय (साहू) साधु (एयत्तं) एकाग्रता को (लद्धूणय) प्राप्त कर (जं) जिस (किंचिवि) किसी भी ध्यान करने योग्य वस्तु को (चिंतंतो) विचार करता हुआ (णिरीह वित्ती) इच्छा रहित हो जाता है (तदा) उस समय (हु) निश्चय से (तं) वह (तस्स) उसका (णिच्छयं) निश्चय से (ज्झाणं) ध्यान (हवे) होता है।

अर्थ - जिस समय साधु; विषय-कषायों को त्याग कर, अरिहन्तादि किसी भी ध्यान योग्य वस्तु का ध्यान करता हुआ, इच्छा रहित होता हुआ, आत्म चिन्तन में लीन हो जाता है, उस समय उसके निश्चय से ध्यान होता है।

प्रश्नः -साधु के निश्चय ध्यान कब होता है?

उत्तरः- जब साधु; विषय-कषायों से विमुख होकर, अरिहन्तादि का ध्यान करता हुआ, आत्म-चिन्तन में लीन हो जाता है तब उसके निश्चय से ध्यान होता है।

प्रश्नः -निश्चय ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तरः- पर से भिन्न; स्व आत्मा में लीनता निश्चय ध्यान है।

प्रश्नः - ध्यान करने वाला क्या कहलाता है ?

उत्तरः- 'ध्याता' कहलाता है।

प्रश्नः - जिसका ध्यान किया जाता है, उसे क्या कहते हैं ?

उत्तरः- 'ध्येय' कहते हैं ।

प्रश्नः - चित्त की एकाग्रता को क्या कहते हैं ?

उत्तरः- 'ध्यान' कहते हैं।

प्रश्नः - ध्यान का फल क्या है ?

उत्तरः- निराकुल सुख की प्राप्ति ध्यान का फल है।

निश्चय ध्यान का स्वरूप

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इण-मेव परं हवे ज्झाणं ॥५६॥

अन्वयार्थ - (किंवि) कुछ भी (मा चिट्ठह) शरीर से चेष्टा न करो (मा जंपह) मुँह से न बोलो (मा चिंतह) मन से न सोचो (जेण) जिससे (अप्पा) आत्मा (अप्पम्मि) आत्मा में (थिरो) स्थिर (होइ) होकर (रओ) लवलीन हो (इण-मेव) यही (परं) उत्कृष्ट (ज्झाणं) ध्यान (हवे) है।

अर्थ - शरीर से कुछ भी चेष्टा न करो। मुँह से कुछ भी न बोलो। मन से कुछ भी मत सोचो, जिससे आत्मा; आत्मा में स्थिर होकर लवलीन हो, यही उत्कृष्ट ध्यान है।

प्रश्नः - परम ध्यान कौन-सा है ?

उत्तरः- मानसिक, वाचनिक और कायिक व्यापार को छोड़कर; आत्मा का आत्मा में लीन हो जाना परम ध्यान है।

प्रश्नः - परम ध्यान की सिद्धि किसे होती है ?

उत्तरः- वीतरागी, निर्ग्रन्थ, दिगम्बर मुनिराज को ही परम ध्यान की सिद्धि होती है।

ध्यान की पात्रता के उपाय

तव सुद वदवं चेदा, ज्झाणरह धुरंधरो हवे जम्हा ।
तम्हा तत्तिय णिरदा, तल्लद्धीए सदा होइ ॥५७॥

अन्वयार्थ - (जम्हा) क्योंकि (तव सुद वदवं) तप, श्रुत और व्रत को धारण करने वाला (चेदा) आत्मा (ज्झाणरह धुरंधरो) ध्यानरूपी रथ को धुरा को धारण करने में समर्थ (हवे) होता है (तम्हा) इसलिए (तल्लद्धीए) उस ध्यान की प्राप्ति के लिए (सदा) हमेशा (तत्तिय णिरदा) उन तीनों में लवलीन (होइ) होओ ।

अर्थ - क्योंकि तप, श्रुत और व्रत को धारण करने वाला आत्मा; उस ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने में समर्थ होता है, इसलिए उस ध्यान की प्राप्ति के लिए हमेशा तप, श्रुत और व्रत; इन तीनों में लवलीन होओ ।

प्रश्नः - ध्याता कैसा होना चाहिए ?

उत्तरः- बारह तप, पाँच महाव्रतों का पालन करने वाला एवं शास्त्रों का मनन करने वाला; तपवान, श्रुतवान और व्रतवान आत्मा ही योग्य ध्याता हो सकता हैं।

प्रश्नः - क्यों ?

उत्तरः- वही ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने में समर्थ होता है।

प्रश्नः - ध्यानी का वाहन बताइये ?

उत्तरः- ध्यानरूपी 'रथ' ध्यानी का वाहन है।

प्रश्नः - ध्यानरूपी रथ में यात्रा करने वाला किस नगर में प्रवेश करता है ?

उत्तरः- 'मोक्षनगर में' प्रवेश करता है।

प्रश्नः - ध्यान की सिद्धि के लिए आवश्यक सामग्री क्या है ?

उत्तरः- ध्यान की सिद्धि के लिए; तप, श्रुत और व्रतों का परिपालन करना आवश्यक है।

ग्रन्थकार की इच्छा

खंदो बद्ध छन्द-उच्चारण चौपाई छन्द जैसा

(दरस विशुद्ध धरै जो कोई, ताकौ आवागमन न होई)

दव्व संगह-मिणं मुणिणाहा, दोस संचय चुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणु सुत्त धरेण, णेमिचंद मुणिणा भणियं जं ॥५८॥

अन्वयार्थ - (तणु-सुत्त-धरेण) अल्पज्ञानी (णेमिचंद-मुणिणा) नेमिचन्द्र मुनि ने (जं) जो (इणं) यह (दव्व संगहं) द्रव्य संग्रह नामक ग्रन्थ (भणियं) कहा है (सुद-पुण्णा) शास्त्र के ज्ञाता (दोस-संचय-चुदा) समस्त दोषों से रहित (मुणिणाहा) मुनिराज (सोधयंतु) शुद्ध करें।

अर्थ - अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र मुनि ने जो यह द्रव्य संग्रह नामक ग्रन्थ कहा है, यदि इसमें कोई गलती हो तो शास्त्र के ज्ञाता, समस्त दोषों से रहित मुनिराज इसे शुद्ध करें।

प्रश्नः -इस ग्रन्थ का नाम क्या है ?

उत्तरः- 'द्रव्य संग्रह' है।

प्रश्नः - 'द्रव्य संग्रह' के रचयिता कौन थे ?

उत्तरः- आचार्यश्री १०८ सिद्धान्तिदेव नेमिचन्द्र मुनि ।

प्रश्नः -अल्पज्ञानी शब्द किस बात का सूचक है ?

उत्तरः- आचार्य की लघुता प्रदर्शन एवं विनय गुण का प्रतीक है ।

प्रश्नः -यहाँ शास्त्र शुद्धि करने का अधिकार किसे दिया है ?

उत्तरः- निर्दोष मुनिराज को; जो कि समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं, वे मुनिराज ही शास्त्र शुद्ध करने के अधिकारी हैं।

इति द्रव्य संग्रह समाप्त

प्रज्ञाश्रमण मुनि

आर्ष-मार्ग

क. ‘ऋषिप्रणीत शास्त्र’ को आर्ष कहते हैं, अतः ऋषियों (आचार्यों-उपाध्याय-साधुओं) की वाणी को मुख्यता से प्रमाणित मानने वाला मार्ग; आर्ष-मार्ग कहलाता है।[१]

ख. जिनेन्द्र देव; वीतराग, सर्वज्ञ व हितोपदेशी होते हैं।

ग. **आत्मा तथा परमात्मा की शरण; संसार-नाश के अनन्य उपाय हैं।**

घ. अनादि से जितने द्रव्य थे, उतने ही आज भी हैं। न कोई घटा है, न कोई बढ़ा, अतः यह स्पष्ट है कि कोई किसी का कर्ता-हर्ता नहीं हैं।

ङ. सब कुछ भाग्य और पुरुषार्थ के योग से ही होता है।[२]

च. वर्तमान काल के मुनिराज भी पूज्य हैं।[३]

छ. पञ्चम काल के अन्त तक भावलिङ्गी मुनि होंगे।[४]

ज. प्रत्येक कार्य; दो कारणों से होता है-अन्तरङ्ग कारण तथा बहिरङ्ग कारण।[५]

झ. शुद्धोपयोग सातवें गुणस्थान से प्रारम्भ होता है, इसके पूर्व नहीं।[६]

ञ. व्यवहार नय झूठ नहीं होता।[७]

ट. अनेकान्तरूप समय के ज्ञाता पुरुष, ऐसा विभाग नहीं करते कि ‘यह नय सच्चा है और यह नय झूठा है।[८]

ठ. पुण्य और पाप कथञ्चित् समान हैं और कथञ्चित् असमान।[९] (कथञ्चित्-किसी दृष्टि से)

ड. आत्मा; शुद्धाशुद्ध का पिण्ड है, अतः वह कथञ्चित् शुद्ध है, कथञ्चित् अशुद्ध।

ण. जो एक जिनवचन को भी नहीं मानता, वह मिथ्यादृष्टि है।[१०]

त. चौथे गुणस्थान में गुण श्रेणी निर्जरा नहीं हो सकती है।[११]

थ. जिसका काल नहीं आया है, उसका मरण नहीं हो सकता, ऐसा एकान्त नहीं है, अतः अकालमरण सत्य है।[१२]

द. निष्काम पुण्य; परम्परा से मोक्ष का कारण है।[१३]

ध. पहले व्यवहार होता है फिर निश्चय।[१४]

न. दान, पूजा, भक्ति; श्रावकों के मुख्य कर्म हैं। (कुन्दकुन्दाचार्य)

प. पुण्य हेय नहीं; गौण हो सकता है। (पूज्यपादाचार्य)

फ. १. निमित्त का अर्थ है; कारण।[१५]

२. निमित्त कुछ नहीं करता, ऐसा कहना ठीक नहीं हैं।

३. निमित्त; अकिञ्चित्कर नहीं होता, जो अकिञ्चित्कर होता है, उसे निमित्त कहते ही नहीं हैं।[१६]

४. शास्त्रों में निमित्त को; कारण, मूल, हेतु, प्रेरक कारण, सहकारी (उदासीन) कारण, उत्तर कारण, अन्तरङ्ग कारण, उत्कृष्ट कारण, अवलम्बन, सहायक आदि कहा है।[१७]

५. "ज्ञानावरणादि कर्म कुछ नहीं करते, अपनी योग्यता से ही ज्ञान में कमी-बेसी होती है" ऐसा कहना ठीक नहीं हैं। अङ्ग ज्ञानधारी भी यदि कहता है तो भी यह ठीक नहीं है।[१८,१९,२०]

टिप्पणः —

१. इसका अभिप्राय है कि पण्डितों के ग्रन्थों की प्रामाणिकता आचार्य-प्रणीत ग्रन्थों के आधार से होती है। पण्डित, विद्वान वही हैं जो दोनों नयों एवं चारों अनुयोगों पर श्रद्धाकर विवेचना करें।

२. जैसा केवलज्ञान में झलका है, वही होता है यह सत्य है। तथैव यह भी सत्य है कि जैसा भाग्य व पुरुषार्थ का योग होगा, फल उसी के अनुसार होगा, अतः पुरुषार्थ में प्रवृत्ति करनी चाहिए।

पुण्य का उदय आयेगा तब अपने आप ठीक होगा। एक पीडित/अभावग्रस्त पुरुष को इस वाक्य द्वारा सान्त्वना देने के बजाय; निम्न शिक्षा देनी चाहिए— हे भव्य ! समीचीन पुरुषार्थ

करो, उससे पुण्य बन्ध होगा और उस पुण्य के उदय में आने पर सब ठीक होगा। यहाँ हम कर्म भूमिज मनुष्यों के लिए सदैव उपयोगी **सूत्र** –

''वर्तमान पुण्य + समीचीन पुरुषार्थ = इच्छित कार्य सिद्धि''

३. आत्मानुशासन श्लोक ३३; प पु० २/३७, मो० पा० ७७, सा० ध० २/६४ प० पु० १/६८ आदि

४. त्रि० सा० ८५७ से ८५९ तथा ति० प० ४/१५२०-१५३३

५. न्यायदीपिका २/४/२७, भ० आ० (विजयो०) १०७०, क० पा० १/१/१३ पृ० २६५, प० मु० ६/६३; स्व० स्तो० ३३, ५६, ६० स० सि० ५/३०/३०० तथा श्लोक वा० भाग; पृ० १९७ - १९८ एवं ज० ध० १५/१९१

६. प्र०सा० गाथा ९ टीका ता०वृ०, वही गाथा १८१ ता०वृ०। बृ०द्र० सं० ३४, अ० अ० क० पृ० ३७४ (पं० जगन्मोहनलाल जी) जैन सन्देश दि० ६.५.५८, पृ० ४, जैन गजट दि० २३.११.६७, पृ० ८ तथा १५.२.७३, पृ० ७ तथा ४.१.६८, पृ० ७। मुख्तार ग्रन्थ पृ० ८३३, प्र० सा० गाथा २३० ता० वृ०, पु० प्र० २/१११ आदि सत्रह प्रमाण देखो:- वीतराग वाणी अप्रेल-मई ९८, पृ० ९-१२।

७. ज० ध० १/७ ण च ववहारओ चप्पलओ।
''व्यवहार अपने अर्थ में उतना ही सत्य है, जितना कि निश्चय'',। वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ३५४-५५, (लेखक पं० फूलचन्द सि० शास्त्री)

८. ते उण ण दिट्ठसम ओ विहयइ सच्चे व अलीए वा। नया संस्करण ज० ध० १/२३३

९. मो० पा० गा० २५ तथा इष्टोपदेश तथा तत्त्वार्थसार (अमृतचन्द्र)

१०. भ० आ० गाथा ३८ - ३९

११. मो० मा० प्र० (सस्ती ग्रन्थमाला प्रकाशन, दिल्ली) अधि० ७ पृष्ठ

३४१, ३०८ तथा ३६४, धवला ८/८३, रतनचन्द पत्रावली १८. १.८०, मुख्तार ग्रन्थ पृ० ८४२, १११० आदि, जयधवल १२/२८५, जैन सं० ११/१२/५८ पृ० ५. जैन गजट ८. १. ७० पृ० ७, फूलचन्द सि० शा० पत्र २०. १. ८० ई०, धवल ६/२३६, बा० अणु० ६७, का० अ० १०४, लब्धिसार (राजचन्द्र०) पृ० ७४, क० पा० सूत्र पृष्ठ ६२८-६२९, सर्वार्थसिद्धि पृ० ३५२ (ज्ञानपीठ) तृतीय पेरा आदि। (इन सब प्रमाणों से यह भी सिद्ध होता है कि चतुर्थ गुणस्थान में अविपाक निर्जरा नहीं होती, गुण श्रेणी निर्जरा; अविपाक निर्जरा ही है।)

१२. व ह्यप्राप्तकालस्य मरणाभावः, खड्गप्रहारादिभिः मरणस्य दर्शनात्। (श्लो० वा० २/५३ भाग ५ पृष्ठ २६१-६२ विद्यानन्दी स्वामी)

नितान्त मौलिक अत्यन्त महत्वपूर्ण निम्न प्राचीन तथ्य भी देखिए-

१. एक्कं पंडिदमरणं छिंददि..............................जादि सयाणि बहुगाणि। (मूलाचार अ० २ गा० ४१) यदि जीव का समाधिमरण हो तो अगणित भव शतक संसार छिदकर मात्र सात-आठ भव प्रमाण रह जाता है।

२. "एक्केण अणादिय मिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि कादूण उवसम सम्मत्तं पडिवण्ण-पढम समए अणंतो संसारो छिण्णो अद्धपोग्गलपरियट्टमेतो कदो।" (धवल पु० ५. पृ० ११. १२. १४. १५. १६. १९)

अर्थ - एक अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव ने अधःप्रवृत्तादि तीनों करण करके उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होने के प्रथम समय में अनन्त (अन्त रहित, अमर्यादित) संसार (अनन्त भव) को छिन्नकर अर्द्धपुद्गल परिवर्तन मात्र किया। (यह कथन धवल पु० ५ पृ० ११. १२. १४. १५. १६ व १९ पर भी है।)

प्रज्ञाश्रमण ज्ञान

३. ततश्च न युक्तं ''भव्यस्य कालेन निःश्रेयसोपपत्तेः इति'', भव्यों के मोक्ष जाने के काल का नियम है, ऐसा कहना ठीक नहीं है (राज वार्त्तिक १/३)

१३. निष्काम पुण्य अर्थात् निदान रहित पुण्य यानी भावी भोगों की इच्छा रहित पुण्य कर्म; करणानुयोग के अनुसार ऐसा पुण्य अनन्त जीवों में से एक जीव ही सञ्चित कर पाता है। ऐसा पुण्य; सम्यग्दृष्टि ही सञ्चित कर पाता है। भावपाहुड ८१ टीका तथा जयधवल १ पृ० ६, सं०सा०१५३ पीठिका, भावसंग्रह गा० ४०४ तथा ४३४, पञ्चास्तिकाय गाथा ८५ की टीका तथा अ०स० पृ० २५७, प०पु० ३२/१८३, मूलाराधना ७४५, उ०अ० १५५. प्र० सा० ४५, अमृतचन्द्रीय टीका, सं०सा० पृ०१८६, स० सा० १४५ आ० ख्या, टीका आदि।

सार यह है कि निष्काम पुण्य (दान-पूजादिक) तत्काल तो बन्ध का कारण होता है, परन्तु परिपाक (उदय) के काल में निष्काम प्रशस्त परिणाम, उत्तम साधन, सत्संग आदि सिलसिलों को यह वह पुण्य प्रदान करता है। ये सभी कथञ्चित् रत्नत्रय के हेतु होते हैं तथा रत्नत्रय से मोक्ष होता है, यही परम्परा शब्द का रहस्य है।

१४. कुन्दकुन्द प्राभृत संग्रह प्रस्तावना पृ० ९८ तथा मुख्तार ग्रन्थ पृ० १३४४ से १३५२ उदाहरण —

१. प्रथम देशना लब्धि (व्यवहार) पश्चात् उपशम सम्यक्त्व (निश्चय) होता है।

२. पहले सुवर्ण पाषाण (व्यवहार) की प्राप्ति के बाद ही सुवर्ण (निश्चय) प्राप्त किया जा सकता है।

३. वस्त्र-त्याग के बाद ही संयम (भावलिङ्ग) सम्भव है। निश्चय की प्राप्ति के पूर्व भी व्यवहार को शक्ति की अपेक्षा व्यवहारपना

(साधन) है ही। इतना अवश्य है कि व्यवहार-अवलम्बन के काल में लक्ष्य निश्चय का ही होना चाहिए।

४. दाणं पूजा मुक्खं सावय धम्मो, (कुन्दकुन्दाचार्य)।

१५. पच्चओ कारणं णिमित्तिमिच्चणत्थंतरं। धवल १२/२७६, स॰सि॰ आदि।

१६. तदसामर्थ्यम् अखण्डयत् अकिञ्चित्कर किं सहकारिकारणम् स्यात् ?

१७. [अयम् अर्थः यत् सहकारिकारणम् (निमित्तं) तत् अकिञ्चित्करं न स्यात्] अष्टसहस्री पृ॰ १०५, न॰दी॰ २/४/२७। अनिमित्त अकिञ्चित्कर होता है, निमित्त नहीं।

१८. धवल १२/२७६, रा॰ वा॰ ५.२४.९ पं॰ध॰उ॰/२०१ पं॰ का॰/त॰ प्र॰/८८, अ॰स॰पृ॰ १०५ तथा २५७ श्लो॰ वा॰ अध्याय ५ सूत्र २४, धवल ११ पृ॰ ३०९ टिप्पण ५, ते॰ सा (हेतुः परः) भ॰ ! आदि ये जिनवचन हैं और जिनदेव असत्य नहीं बोलते है, पर द्रव्य में सहकारी कारण (सहायक) होने की शक्ति है, ऐसा अनन्त तीर्थङ्करों ने कहा है।

१९. पू॰ गणेशप्रसाद वर्णी न्यायाचार्य (दि॰ ११. ७. ५७ जै॰ सं॰), प॰प्र॰ १/७८, प्र॰ सार ११८, ज॰ध॰पु॰ ३ पृष्ठ २४५, ज॰ध॰१ पृष्ठ २९१, मूलाराधना १६२१ का, अनु॰ २११ अष्टसहस्री/प्रथम परि॰/ का॰ ४१

२०. कल्याणकारणः श्री उग्रादित्याचार्य कृत पूरा ग्रन्थ, जयधवला १/०५१, रा॰ वा॰ २/५३/११/१५८, श्लो॰ वा॰ ५/२/५३ आदि। जै॰ ग॰ ६.०२.२००३ पृ॰ ३ विशेषः पं॰ नाथूलालजी शास्त्री इन्दौर लिखते हैं कि "व्यवहार की परिभाषायें अनेक हैं, अतः निश्चय-व्यवहार साथ-साथ भी हो सकते हैं।"

जैसे - ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से आत्मा में अनन्त गुण नहीं होते हैं, पर

इसका अर्थ यह तो नहीं लिया जा सकता है कि आत्मा में अनन्त गुण होते ही नहीं। **जैसे-** शुद्ध नय की दृष्टि में बन्ध और मोक्ष नहीं होते तो इसका अर्थ यह तो नहीं लिया जा सकता कि बन्ध और मोक्ष होते ही नहीं। इसी तरह निश्चय नय की दृष्टि से निमित्त कुछ भी नहीं करता तो इसका अर्थ यह तो नहीं लिया जा सकता कि निमित्त कुछ करता ही नहीं, बल्कि ऐसा समझना चाहिए कि उस-उस नय की दृष्टि में ही वैसा माना गया है।

प्रस्तुति
पण्डित जवाहरलाल सिद्धान्त शास्त्री
भीण्डर, उदयपुर (राजस्थान)

प्रज्ञाश्रमण मुनि